ओ३म्

आर्य प्रतिनिधि सभा म.प्र. व विदर्भ का मुख पत्र | जनवरी-फरवरी २०१९

आर्य सेवक

आर्य समाज मंदिर मे शहिदों को श्रद्धांजली व आत्मा शांति यज्ञ किया गया।

सभा कार्यालय - दयानन्द भवन, मंगलवारी बाजार, सदर, नागपुर (महाराष्ट्र)

ऋग्वेद

॥ ओ३म्॥

यजुर्वेद

धार्मिक लोक न्यास ट्रस्ट

महर्षी दयानंद सरस्वती

आर्य प्रतिनिधि सभा मध्यप्रदेश व विदर्भ के सौजन्य से
आर्य समाज मन्दिर, हँसापुरी, एवं सदर, नागपूर

द्वारा आयोजित

महर्षि दयानन्द सरस्वती जन्मोत्सव एवं बोधोत्सव समारोह

दि. १/३/२०१९ से ३/३/२०१९ तक महाशिवरात्रि के पावन पर्व पर

मान्यवर,

सादर नमस्ते !, परमात्मा की असीम कृपा से महान समाज सुधाकर एवं युग प्रवर्तक जगद्गुरू महर्षि दयानन्द के जन्मदिवस एवं बोधदिवस शिवरात्री के पावन अवसर पर आयोजित यजुर्वेद पारायण महायज्ञ व भजन एवं प्रवचन मे आप सभी सादर आमन्त्रित है।

इस पुनीत बेला मे अधिकाधिक संख्या में पहुँचकर वेदामृत पान कर सुख शान्ति प्राप्ती का यत्न करे।

यजुर्वेद पारायण यज्ञ के ब्रम्हा – पं. कृष्ण कुमार शास्त्री

प्रवचन – अशोक यादव (सभामंत्री), प्रा. अनिल शर्माजी (सभा उपप्रधान), कार्तिक अय्यैर, भजन–रंगलाल प्रजापती, संतोष गुप्ता

॥ कार्यक्रम ॥

दिनांक १–३–२०१९ प्रातः ८ बजे से १० बजे

यज्ञ, भजन, प्रवचन – विषय : महर्षि दयानन्द जन्मोत्सव

म. कॉनव्हेंट स्कूल के बच्चों द्वारा भजन, गीत – प्रश्नोत्तरी कार्यक्रम

सायं. ५ बजे से ७ बजे

यज्ञ, भजन, प्रवचन – विषय ईश्वर कहाँ है? क्या करता है? क्या नही करता? कैसे प्राप्त होता है?

दिनांक २–३–२०१९ प्रातः ८ बजे से १० बजे तक

यज्ञ, भजन, प्रवचन – विषय धर्म का स्वरूप

सायं. ५ बजे से ७ बजे तक

यज्ञ, भजन, प्रवचन – विषय ध्यान योग क्या है?

दिनांक ३–३–२०१९

पंच्च कुंण्डीय यज्ञ – पुर्णाहुति ८ से ११ बजे तक

भजन, प्रवचन – विषय यज्ञ का महत्व

* * *

ओ३म्

आर्य सेवक

आर्य प्रतिनिधि सभा म. प्र. व विदर्भ का मुखपत्र

वर्ष – ११६ अंक १५
सृष्टि संवत १९६०८५३११९
दयानन्दाब्द – १९५
संवत – २०७५
सन् २०१९ जनवरी–फरवरी

प्रधान
पं. सत्यवीर शास्त्री, अमरावती
मो.नं. ०९४२२१५५८३६

मंत्री एवं प्रबंधक सम्पादक
अशोक यादव
मो. ०९३७३१२११६३
०९५११८३८९८१

सम्पादक एवं उपप्रधान
जयसिंह गायकवाड़, जबलपुर
मो. ०९४२४६८५०९१
e-mail : jasysinghgaekwad@gmail.com
निवास - ५८०, गुप्तेश्वर वार्ड, .
कृपाल चौक, मदन महल, जबलपुर

सह सम्पादक
प्रा. अनिल शर्मा, नागपुर
मो. ९३७३१२११६४
मनोज शर्मा
मो. ९५६१०७९८९४

कार्यालय पता :
दयानन्द भवन, मंगलवारी बाजार,
सदर, नागपुर-४४०००१ महाराष्ट्र
दूरभाष क्र. ०७१२-२५९५५५६

अनुक्रमणिका

क्र.	लेख	लेखक	पृष्ठ क्र.
१.	संपादकीय	-	२
२.	पतिव्रता आर्या रामरखी	डॉ. बिजेन्द्रपाल सिंह	३-४
३.	महर्षि दयानन्द सरस्वतीजी	पं. उम्मेदसिंह विशारद	५-७
४.	मांसाहार	-	७
५.	नारी सशक्तिकरण	कु. वैशाली आर्या	८-१०
६.	चाणक्य नीति दर्पण	-	११-१२
७.	आर्य समाज ही काळाची गरज	रमेश ठाकुर (गुंजोटीकर	१३-१४
८.	अक्षर अमर रहें	डॉ. सुद्युम्न आचार्य	१५-१७
९.	विद्यार्थीकाल है स्वयं को सहीं दिशा देने का काल	-	१८
१०.	वेद द्वारा जीने की कला	अरुण सतीजा	१९-२१
११.	वेद ही विश्व की एकमात्र धर्म पुस्तक	स्वामी सोम्यानन्द सरस्वती	२२-२३
१२.	मदिरा औषधि नहीं, विष है	-	२३
१३.	संबंधो को ठीक बनाए रखने के लिए स्नेह की कुछ बूंदे	सीताराम गुप्ता	२४-२५
१४.	प्राक्कथन	महात्मा गोपाल स्वामी सरस्वती	२६
१५.	आमुख	महात्मा चैतन्य मुनि	२७
१६.	वन्दना क्यों?	प्रो. उमाकांत उपाध्याय	२८-३०
१७.	सृष्टि का रचनाकार	डॉ. बिजेन्द्रपाल सिंह	३०-३१

* * * * *

टीप - प्रकाशित कृतियों में व्यक्ति विचार लेखकों के हैं इनसे आर्य सेवक का सहमत होना आवश्यक नहीं है।

- संपादकीय -

आजकल विश्व के अधिकांश देशों में नववर्ष का शुभारंभ एक जनवरी की अर्ध-रात्रि अर्थात रात को १२ बजे होता है। जो अंधकार का प्रतीक है। ज्यों ही घडी की दोनों सुईयां १२ पर मिलती है, तो फोनों की घंटिया बज उठती है। हैप्पी न्यु ईयर का शोर सुनाई देता है। सभी मित्रजन तथा रिश्तेदार परस्पर एक दूसरे को नव-वर्ष की बधाई एवं शुभकामनाएं देते हैं। नववर्ष का स्वागत आतिशबाजी तथा बैंण्डबाजों से किया जाता है। महीनों पहले अमीर जादों के लिए क्लब, होटल व रेस्टॉरेंट बुक होते हैं। जहाँ बार-बालाएं, फिल्मी गानों की धुनों पर थिरकती नजर आती है। उनकी वेश-भूषा अजीबो गरीब होती है, जिन्हें देखकर लज्जा आती है। वह अपने अतिथियों का स्वागत शराब से भरी प्यालियों से करती हैं। ऐसे मदभरे वातावरण में अनगिनत अनैतिक घटनाएं घट जाती हैं, जो समाज के लिए कलंक है।

कैसी विडबंना है कि नव-वर्ष का प्रारम्भ रात को १२ बजे से होता है। आधी रात को अगला दिन मान लिया जाता है, जो ईश्वरीय नियम के विरूद्ध है। ऋषि मुनियों, आर्य ग्रन्थों तथा वेदोनुसार दिन का शुभारंभ तो ब्रम्हमुहुर्त से होता है। उसी समय हर प्राणी निद्रा से जाग उठता है। उसी समय संपूर्ण संसार में सक्रियता तथा क्रियाशिलता दिखाई देती है। यह कैसी अज्ञानता है। हमारी युवा पीढ़ी ही नहीं, बल्कि लगभग सभी भारतीय ही इसी को अपना नव-वर्ष मानकर मनाते हैं। पाश्चात्य सभ्यता का अन्धानुकर हमारी नियति बन चुका है।

क्या हम भारतीय भी इसी वर्ष को अपना नव-वर्ष स्वीकार कर चुके हैं? क्या सदा से भारतीय इसे ऐसे मनाते रहे हैं, क्या ईसा पूर्व हमारा कोई संवत्सर नहीं था?

सच तो यह है कि अधिकांश लोग विशेष कर हमारी युवा पीढ़ी आदिकाल के नव-वर्ष से पूर्ण रुप से अपरिचित है, क्योंकि आज न तो घरों में इसे वैदिक रीति से मनाया जाता है, न ही बच्चों को बताया जाता है। भारतीय जीवन के मूल्य तो उच्च कोटी के हैं। आज हमारा देश और हम स्वतंत्र है। आओ मिलकर सब संकल्प करें कि आज से कभी भी इस पाश्विक प्रवृत्तियों से पूर्ण एक जनवरी को नव-वर्ष के रूप में कभी नहीं मनाएंगें। प्रतिवर्ष मार्च-अप्रैल में नव-संवत्सर (गुढी पाडवा) को आदि काल से चली आ रही पद्धती से मनाएंगें। यज्ञों के माध्यम से परस्पर कहेंगे - नए साल की बधाई हो! नववर्ष की शुभेच्छा ! संपूर्ण विश्व तभी जान पाएगा कि यह है वह आदि सृष्टि मानव का संवत्सर जिसे उनके पूर्वज कभी मनाते रहे है। यह संवत्सर ज्ञान विज्ञान से पूर्ण, वेदोक्त तथा भारतीय संस्कृति का प्रतीक है। इसे सदा मनाते थे, मनाते रहेंगे।

* * * * *

पतिव्रता आर्या रामरखी

वायसराय पर बम फेंकने के आरोप में अदालत मे मास्टर अमीरचन्द, भाई बाल मुकुन्द, अवध बिहारी और वसंत कुमार को फांसी की सजा सुनायी, बलराज व हनवन्त सहाय को सात-सात वर्ष की कैद हुयी।

इनमें से बाल मुकुन्दभाई परमानन्द के चचेरे भाई थे जो भाई मतिदास के वंशज थे। भाई मतिदास को अपने धर्म पर अडिग रहने के कारण औरंगजेब के समय आरे से चीर दिया गया था। धर्म पर मिटने वालों (मतिदास) के वंशज वाल मुकुन्द का जन्म सन् १८८५ में जेहलम जिले के चकवाल गांव में हुआ था इनके पूर्वज भाई मतिदास भाई सतीदास और बाबा दयाल नवें गुरु तेग बहादुर के साथ दिल्ली में शहीद हुए थे। भाई परमानन्द, भाई बाल मुकुन्द भी देश भक्ति हेतु मर मिटने वाले अपने पूर्वजों के समान क्रान्ति कारी थे यही नहीं भाई बाल मुकुन्द की पटनी जिनका नाम राम रखी था अपने पति हेतु प्राण अर्पित करने वाली पतिव्रता व देश भक्ति की एक अनुपम मिसाल थी भारतीय नारी का एक उदाहरण थीं।

राम रखी के पिता भी आर्य समाजी थे और पति बाल मुकुन्द भी आर्य समाजी थे। १७ वर्ष की अवस्था में इनका विवाह हो गया था। राम रखी को विवाह से पूर्व यह पता था कि भाई बालमुकुन्द क्रान्तिकारी हैं। इनके बड़े क्रान्तिकारियों से सम्बन्ध हैं। इस पर राम रखी को गर्व था वह अपने अल्पकाल के वैवाहिक जीवन से सन्तुष्ट थीं वह कहती थीं कि मरे पिता एक आर्य समाजी थे और मैं भी एक आर्यवीर पुरुष से व्याही गयी हूँ।

जब भाई बाल मुकुन्द को फांसी की सजा का समाचार रामरखी को घर में होनेवाले हृदयविदारक विलाप से लिा - इसने मुझे बता दिया कि मेरे माथे का सौभाग्य चिन्ह सदा के लिए मिटा दिया गया है।

जब रामरखी अपने पति से कारागार में मिलने गयी थीं तो पति ने राष्ट्र धर्म का उपदेश दिया था जो रामरखी के कानों में उसका एक एक शब्द मन्दिर के घण्टे की आवाज की भांति गूँजता रहा था उन्हें लगता था कि उनके पति सामने खड़े हो कर समझा रहे हैं।

तुम तो आर्य कन्या हो। तुम्हें तो वास्तव में गौरवान्वित होना चाहिए कि मात्र भूमि की पराधीनता का पाश तोड़ने के लिए तुम्हारा पति देश पर कुर्बान हो रहा है। मैं जहां भी रहूँ लेकिन मेरी आत्मा तो तुम्हारे पास ही रहेगी। जाओ वीर नारी की भांति अपने कर्तव्य का पालन करो।

रामरखी ने अपने पति के उपदेश सुन जेल से आकर उन शब्दों का पूरी तरह से पालन किया यह शब्द भाई बालमुकुन्द ने जेल मे मिलने आई अपनी पत्नी रामरखी से कहे थे। जेज मे अपने पति से मुलाकात कर रामरखी अपने गांव करियाला आ गयी। जेल में रामरखी ने अपने पति से पूछा था कि जेल में उन्हें खाने को क्या मिलता है वे कैसे और कहां सोते हैं कैसे रहते है?

करियाला आकर राम रखी ने मोटी मोटी रोटी खाना और कम्बल बिछा कर बन्द कोठरी में सोना शुरू कर दिया था। इसमें उन्हें अत्यधिक आनन्द की प्राप्ति की अनुभूति हुयी थी उन्होंने लिखा है -

मेरा मन, प्राण और आत्मा स्वामी के मन-प्राण और आत्मा में विलीन हो जाने के लिए अकुला रहे है। पति मिलन की प्रतीक्षा मे सती को कितनी गहन जलन का अनुभव होता है, इसे शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता है।

जब से मैंने अपने को गन्दी कोठरी में बन्द कर लिया और निकृष्ट स्वाद वाली मोटी रोटी खाकर सख्त फर्श पर कम्बल बिछा कर सोना प्रारम्भ कर दिया है तब से मेरे सर्वाङ्ग का दाह कम हो गया है। मैं महसूस कर रही हूँ कि मेरे पति और मेरे बीच की दूरी कम हो रही है और बहुत जल्दी ही मेरे ये प्राण पति के प्राणों में समा जाने वाले हैं।

देश पर अपना जीवन बलिदान करने गले पति की मैं अर्धांगिनी हूँ। अतः मेरा यह धर्म है कि मैं भी अपनाजीवन उन पर वार दूँ। मेरे सतीत्व की परीक्षा की कठिन घड़ी आ पहुँची है। मैने भी निश्चय कर लिया है क मैं अपना जीवन अपने पति पर कुर्बान कर दूँगी। बलिदानी व्रत को स्वीकार करके मुझे बेहद सुख की अनुभूति हो रही है।

जब तक रामरखी के पति जेल में रहे तब तक यह अंधेरी गंदी कोठरी में कम्बल बिछा कर सोती थी। मोटी मोटी रोटी खाती थीं। पति को हर समय याद करती रहती थी। जब पति की मृत्यु का समाचार मिला तो इनकी आत्मा पति की आत्मा से मिलने को विछल हो गयी।

मेरी अन्तरात्मा फूट फूट कर रोने लगी। मैं अपने स्वामी से किस तरह मिल सकूँगी। एकमात्र यही आवाज मेरे कानों में सुनायी दे रही थी। मैंने स्वामी से बहुत शीघ्र मिलने का संकल्प कर लिया। अन्न जल छोड़ दिया। मेरे स्वामी को जिस अन्न जल की अब जरूरत नहीं रही उसे मैं कैसे ग्रहण करुँगी ? मेरे स्वामी ने अपने शरीर का त्याग कर दिया है मैं भी अपने शरीर को शीघ्र ही त्याग दूँगी और अन्रिक्ष में उनकी आत्मा के साथ मिलूँगी।

रामरखी ने अठारह दिन तक अन्न जल ग्रहण नहीं किया पति के वियोग में मिलने हेतु प्रार्थना करती रहती थी कहती थी –

स्वामीजी तुम अब मेरे पास आने से रहे । मैं ही जल्दी तुम्हारे पास पहुँचती हूँ। बताओ तो सही कि अन्तरिक्ष में किस अंचल में तुम्हारी आत्मा विचराज कर रही हैं। मैं भी आना चाहती हूँ। मैं जानती हूँ कि तुम मेरी प्रतिक्षा जरूर कर रहे होगे मुझे जल्दी अपने पास बुला लो प्राणनाथ!

यह है भारतीय नारी का चरित्र । ऐसी सन्तारियां जिन्होंने पतिव्रत धर्म जो देश हित में था निर्वाह किया और अपने प्राण समर्पित कर दिए। अरुन्धती, अनुसुइया आदि ऐसी ही महान आत्माएँ थी। रामरखी ने भी बलिदानी पति हेतु अपने प्राण न्यौछावर कर दिए और उसकी आत्मा पति की आत्मा से जा मिली। ऐसी महान नारियों को सदैव याद रखा जायेगा। उनका पातिव्रत्य धर्म अनुकरणीय रहेगा।

(हम क्रान्तिकारियों के बलिदान का इतिहास पढ़ना चाहिए, यह पंक्तियां डॉ. सत्यकेतु विद्यालंकार के आर्य समाज के बिंद इतिहास पुस्तक से ली गयीं है।

– डॉ. बिजेन्द्रपाल सिंह
चन्द्रलोक कालोनी, खुर्जा.
मो.: ८९७९७९४७१५

* * * * *

महाभारत काल के पांच हजार वर्षो बाद समस्त बुराईयों को दूर करने वाले एक मात्र महर्षि दयानन्द सरस्वती जी पहले ऋषि हुए। सन् १८८३ के दीपावली के दिन अनन्त यात्रा मे जाते हुए करोडो मानवो मे आत्मिक ऊर्जा के करोडो दीप जला गये। धन्य हो ऋषि दयानन्द जी।

– पं० उम्मेद सिंह विशारद
मो० ९४२२१५१२०१९, ९५५७६४१८००

युग पुरूष महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने सत्य ईश्वरीय ज्ञान व वेदो के सत्य अर्थो के मार्ग से हजारो वर्षों से सुसुप्त करोडो मानवो की आत्माओ मे आत्म ज्ञान के दीप जलाने वाले पहले ऋषि थे।

जब–जब सृष्टि मे ईश्वरीय वाणी वेद ज्ञान का सत्य अर्थो के अभाव से मानव जगत मे अनेक बुराईयां उत्पन्न होती है, तब–तब मोक्ष से लौट कर महापुरूषों का जन्म होता है। ऐसे महापुरूष विश्वात्म के वाहन होते है। किन्तु वह परमात्मा के अवतार नही होते, अपितु उनमे समाज की बुराइयों को मिटा देने के लिए आत्मा शक्ति का संचार होता हैं अठारवीं व उन्नीसवी सदी मे भारत की जनता की आध्यात्मिक, सामाजिक, राजनैतिक बुराइयों को दूर करने के लिए विषम परिस्थितियो मे प्रत्येक चुनौतियो को स्वीकार करके रण क्षेत्र मे महर्षि दयानन्द उतर पडे थे।

महर्षि दयानन्द समय के दास बनकर नही आये थे किन्तु समय को अपना दास बनाने केलिए आये थे। जमाने की गर्दन पकड कर सत्य मार्ग पर चलाने आये थे। महर्षि दयानन्द जी जब रण क्षेत्र मे उतरे तो उन्हे चारो तरफ ललकार ही लकार सुनाई दी, चारो ओर चुनौतियां ही चुनौतियां नजर आ रही थी। पांच चुनौतियां उनके सामने मुख्य थी जो निम्न प्रकार से है।

आश्चर्य होता है –

युग मे एक ऐसा ऋषि दुनिया को मिला, जिसने संसार की तमाम बुराइयो को दूर करने का बीडा उठाया था। इतिहास मे एक ऐसा महापुरूष को हम देव कहे या ऋत देव कहे। मेरे ऋषि ने ईश्वरीय व्यवस्था व ईश्वरीय शिक्षा वेदो की ओर संसार को लौटाया, और संसार के हित के लिये अपने प्राणो की भी आहूति दे दे ! संसार के मनीषियो को निपर्क्ष चिन्तन करना चाहिए।

प्रथम चुनौति भारत को विदेशियो से मुक्त कराने की थी –

महर्षि दयानन्द सरस्वतीजी ने पहली चुनौति पर विचार किया कि दयानन्द तुम अपनी मातृ भूमि को विदेशियों का गुलाम रहने दोगे। अन्दर से आवाज आई मै विदेशी राज्य को बर्दाश्त नही करूगां। उन्होंने राजस्थान के राजाओं को अंग्रजी शासन के प्रति विद्रोह करने के लिए तैयार करना शुरू कर दिया। दयानन्द जी के जीवन का बडा भाग भारत माता को स्वतन्त्र कराने की योजना मे बीता। उन्होने अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश मे लिखा स्वराज्य सर्वोपरि होता है और महर्षि दयानन्द जी द्वारा निर्मित आर्य समाज के लिये व सत्यार्थ प्रकाश मे लिखते है कि जो उन्नति करना चाहो तो आर्य समाज के साथ मिलकर उसके उद्देश्यानुसार आचरण करना स्वीकार कीजिए नही तो कुछ हाथ न लगेगा। क्योंकि हम और आपको उचित है कि जिस देश के पदार्थों से अपना शरीर बना, अब भी पालान होता है, आगे भी होगा, उसकी उन्नति तन, मन, धन से सब जने मिलकर प्रीति से करें। इसलिए जैसा आर्यसमाज आर्यवर्त्त देश की उन्नति का कारण है वैसा दूसरा नही हो सकता। राष्ट्र को विदेशियो से मुक्त कराने की जिस चिन्गारी को बीजारोपण महर्षि दयानन्द जी ने किया था उसकी प्रेरणा से लाखो–लाखो वीरो ने भारत माता के लिये अपना बलिदान देकर भारत माता को बेडियो से मुक्त कराया था।

द्वितीय चुनौति वेदो के रूढी अर्थों को शुद्ध करने की थी –

भारत का धर्म वेदो से बंधा हुआ था। क्योंकि महर्ष्रि दयानन्द जी से पूर्व विद्वानो ने वेदो के मन्त्रो के अर्थ इतिहास परक किये थें शंकराचार्य, सायणाचार्य, महीधर, जेकोवी, मेक्समूलर आदि विद्वानो ने वेदो के अर्थ किये कि वेद स्त्रीयो को नही पढाना चाहिए, शूद्रो को वेद पड़ने का अधिकार नही हे। वर्ण व्यवस्था जन्म से होनी चाहिए। दलित वर्ग को समाज मे दास के रूप मे रहना चाहिए। कलिप्त देवताओं की पूजा करनी चाहिए। और देवी देवताओ के नाम पर पशु बलि देनी चाहिए। भूत प्रेत जादू–टोना वेदो मे लिखा है। उन्होने वेदो के रूढी अर्थ करके समपूर्ण समाज वादी व्यवस्था को अन्धविश्वास के कुएं मे ढकेल रखा था। महर्षि दयानन्द जी ने वेदो के रूढी अर्थो पर प्रहार किया और निरूक्ता शास्त्र के अनुसार उन्होने सिद्ध किया कि वेदो मे जो कुछ लिखा है उसी को ईश्वर विधान मानते थे, क्योंकि वेद ईश्वरीय ज्ञान है। वे संस्कृत के अगाथ पंडित थे। उन्होने सिद्ध किया कि वेदो मे स्त्री और शूद्रो को वेद पडने का अधिकार है, वेदो मे मूर्ति पूजा नही है, वेदो मे पशु बलि नही है, वेदो में तन्त्र मंच प्रेत पूजा नही है, वेदो में जाति व्यवस्था नही है वर्ण व्यवस्था है। वेदो में कोई भी धार्मिक सामाजिक अन्धविश्वास नही है। उन्होने सिद्ध किया कि ईश्वर ने सृष्टि आदि मे ऋषियो की आत्मा मे वेदो का ज्ञान, सृष्टि क्रमानुसार, विज्ञान के अनुसार दिया है। इसलिए वेदो के मन्त्रो के अर्थ भी ईश्वरीय विधान के अनुसार है। वेद पहले बने और इतिहास वाद मे, इसलिए वेदो के अर्थ रूढि नही है।

तृतीय चुनौति धार्मिक अन्ध विश्वासों द्वारा हानि की थी –

तथा कतिथ हिन्दु धर्म की आधार शिला वेद थे। महर्षि दयानन्द जी ने वेदो के रूढीवादी अर्थों पर प्रहार कर सारे दृष्टिकोण को बदल दिया। ऋषि अपने ग्रन्थो मे लिखते है कि धर्म परमात्मा द्वारा बनाया है और मत मनुष्यो द्वारा बनाए जाते है। वास्तव मे जिन्हे समाज धर्म का नाम देता है वह मत है, और प्रत्येक मतो मे भिन्नता है, किन्तु ईश्वरीय धर्म एक ही रहता है। ईश्वरीय धर्म जैसे सूर्य, चन्द्रमा, ऋतुऐं, पृथ्वी तत्व, रात दिन, जन्म मरण, वनस्पति, प्रत्येक पदार्थ नियम मे सदैव रहते है, और अपने स्वरूप को कभी नही बदलते जैसे आंख का देखना कान का सुनना कभी नही बदलता, और मृत्यु के उपरान्त दूसरे जन्म मे वही प्रतिक्रिया होती है, उसी को ईश्वरीय धर्म कहते है। और मत देश काल परिस्थिति से बनते और मिटते रहते है। आर्य समाज और वैदिक धर्म को छोडकर आज सारा संसार मतो को धर्म मानकार धार्मिक अन्धविश्वास के पाटों मे पिस रहा है। महर्षि दयानन्द जी ने धर्म का वास्वतिक स्वरूप सबके सामने रखा, और तमाम धार्मिक अन्धविश्वासो को समाप्त करने के लिये सत्यार्थ प्रकाश ग्रन्थ लिखा और आर्य समाज रूपी क्रान्तीकारी संगठन बनाया।

चतुर्थ चुनौति सामाजिक रूढीवाद को समाप्त करने की थी –

हजारो वर्षों की गुलामी के कारण भारतीय समाज मे मानवता की भावना समाप्त हो रही थी, फल स्वरूप, दास प्राथी, दहेज प्रथा, सति प्रथा, बलिप्रथा, जाति पांति प्रथा, छुआ–छुत प्रथा, काल्पिनिक देवताओ की पूजा प्रथा, शूद्रो और नारियो को न पढाने की प्रथा, मृत्यू भोज, पिण्डदान प्रथा, आदि अनेक घातक सामाजिक बुराइयों से भारत की जनता त्रस्त थी। महर्षि जी ने इस वेदना को समझा और उक्त तमाम बुराइयों के खिलाफ युद्ध छेड दिया। उन्होने हिन्दु को हिन्दु रहते नये रंग मे रंग दिया। और सभ्य समाज की रूप रेखा बनादी। उसी को लेकर २०वीं शताब्दी राजनैतिक व सामाजिक नेताओ कार्य किया। तथा भारत सरकार ने कानून का रूप दिया।

पंचम चुनौति राजनैतिक क्षेत्र मे रूढीवाद पर प्रहार किया –

राजनैतिक क्षेत्र मे जिसका राज चला आ रहा था वही ठीक है। यह रूढी विचार थे। महर्षि दुखित मन से सत्यार्थ प्रकाश मे लिखते है कि अभाग्योदय से और आर्यो के आलस्य प्रमाद, परस्पर विरोध से अन्य देशो मे राज्य करने की कथा ही क्या कहानी, किन्तु आर्यवर्त मे भी आर्ये का अखण्ड स्वतन्त्र, स्वाधीन, निर्भय राज्य इस समय नही

हैं जो कुछ है सभी विदेशियो से पदाक्रान्त हो रहा है, जब दुर्दिन आता है तब देशवायियों को अनेक प्रकार का दुख भोगना पडता हैं कोई क्कितना ही करे परन्तु जो स्वदेशी राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है। अथवा मतमतान्तर के आग्रह रहित अपने और पराये का पक्षपात शून्य प्रजा पर माता-पिता के समान कृपा, न्याय, और दया के साथ विदेशिया का राज्य भी पूर्ण सुखदायक नही हो सकता। जो है ठीक है इसी रूढीवादी भावना पर ऋषि दयानन्द जी ने धार्मिक सामाजिक तथा राजनैतिक क्षेत्र मे सीधी चोट की। इसलिए वह तमाम बुराइयों को मिटाने वाले पहले ऋषि हुए।

नोट- आज महर्षि दयानन्द जी द्वारा वैचारिक क्रान्ती को आर्य समाज सम्पूर्ण विश्व मे अपना परचम फहरा रहा है। एक दीप करोडो-करोडो दीपों को प्रज्जवलित कर गया।

- पं० उम्मेदसिंह विशारद
वैदिक प्रचारक
गढ निवास मोहकमपुर, देहरादून, उत्तराखण्ड।
मो० ९४११५१२०१९, ९५५७६४१८००

* * * * *

मांसाहार

मांसाहार या शाकाहार : मनुष्य स्वयं को संसार के समस्त प्राणियों से ऊँचा या श्रेष्ठ मानता है, परन्तु उसे इतना भी ज्ञान नहीं है कि वह क्या खाए और क्या न खाए? संसार के समस्त पशु-पक्षी यह जानते हैं कि उन्हें क्या खाना है और क्या नहीं खाना? संसार में पशु-पक्षियों को आहार की शिक्षा कहीं भी नहीं दी जाती। उन्हें तो परमात्मा की कृपा और उसके विधानानुसार जन्म से ही यह ज्ञान होता है कि उसे क्या खाना है और क्या नहीं खाना?

इसके विपरीत मनुष्य को धर्मग्रन्थों से लेकर आधुनिक वैज्ञानिक तक यही शिक्षा दे रहे हैं कि मांस मनुष्य का भोजन नहीं है, परन्तु मनुष्य ने किसी भी सद्परामर्श को नहीं माना और न आज मान रहा है। वह अपने अस्त्र-शस्त्र के बल पर निरीह पशु-पक्षियों की निर्दयतापूर्वक हत्या करके उन्हें खाता जा रहा है।

परमेश्वर ने मनुष्यों के भोजन के लिए हितकर, स्वच्छ, स्वादिष्ट, सरस, पौष्टिक और बुद्धि-स्वास्थ्यवर्धक अनेक प्रकार के अन्न, फल, शाकादि बनाए हैं और वेदों में इन्हीं पदार्थों को खाने का आदेश दिया है, परन्तु मनुष्य अपना पेट भरने के लिए परमात्मा के आदेश का उल्लङ्घन करके दूषित, अहितकर, रोगोत्पादक मांस को ही खाते जा रहे हैं। क्या यह मनुष्य की उन्नति है या अवनति?

स्वयं को सर्वश्रेष्ठ समझनेवाले मनुष्य से तो अन्य सभी पशु-पक्षी ही श्रेष हैं, क्योंकि जो पशु-पक्षी शाकाहारी होते हैं, वे मांसाहार की ओर देखते भी नहीं और जो पशु-पक्षी केवल मांसाहारी होते हैं, वे घास-फँस नहीं खाते।

यही स्थिति पेय पदार्थों के सम्बन्ध में भी है। ईश्वर ने प्यास लगने पर मनुष्य केलिए जल-दूध, फलों का रस उत्पन्न किये हैं, परन्तु वह विना प्यास भी मदिरा, आदि हानिकारक पेय पदार्थों को पीता है। संसार के सभी पशु-पक्षी भयंकर प्यास लगने पर भी केवल जल ही पीते हैं।

मनुष्य ने खाने-पीने की अपनी सभी मर्यादाओं को तोड़ दिया है। इसीलिए आज वह निर्बल पशु-पक्षियों, कीट-पतङ्गों, कीड़ों-मकोड़ों, आदि सभी को खाने लगा है। वास्तव में खाने-पीने की दृष्टि से मनुष्य का घोर पतन हुआ है। मनुष्य की वीरता युद्ध में शत्रुओं को मारकर विजय प्राप्त करना है, परन्तु वर्तमान मनुष्य निर्बलों की रक्षा करने तथा युद्ध में शत्रु को मारने में नहीं, वरन् निर्बल पशु-पक्षियों की हत्या करके, उन्हें, खाने में अपनी वीरता समझता है।

वर्तमान मनुष्य ने भक्ष्याभक्ष्य का विचार ही त्याग दिया है। महापापी मनुष्यों ने संसार के सभी प्राणियों का मांस खा लिया। उसने आकाश में उड़नेवालों में केवल पतङ्ग, सीढ़ी को और जल में रहनेवालों में केवल नाव को ही छोड़ा है। पतङ्ग, सीढ़ी और चारपाई भी इसलिए बच सके, क्योंकि मनुष्य इन्हें खा नहीं सका। इन तीनों को छोड़कर मनुष्य ने सभी प्राणी खा डाले। यहाँ कविवर मैथिलीशरण गुप्त की ये पक्तियाँ द्रष्टव्य हैं -

वीरत्व हिंसा में रहा जो मूल उनके लक्ष्य का। कुछ भी विचार उन्हें नहीं है, आज भक्ष्याभक्ष्य का।।
केवल पतङ्ग विहङ्गमों में, जलचरों में नाव ही। बस भोजनाथ चतुष्पदों में चारपाई बच रही।। - (भारतभारती)

नारी सशक्तिकरण

प्राचीन वैदिक साहित्य के अनुसार समाप्त में नारी का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रहा। वह किसी भी क्षेत्र में पुरुष से पीछे नही थभ। अर्थववेद में पुरूष और नारी की परस्पर स्थिति और उनके कार्यों के विवेचन की इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है :-

भूमिर्माता द्यौः न पिता। (अर्थववेद ६/१२०/२)

अर्थात समाज में पुरुष व नारी का कार्य वही है जो भूमण्डल में पृथ्वी और सूर्य का।

नारी सशक्तिकरण का तात्पर्य है कि महिलायें स्वंय को संगठित एवं सुदृढ़ बनायें। आत्म निर्भर बनें। साथ ही सामाजिक एवं राष्ट्रीय आंदोलनों का हिस्सा बन कर उनका नेतृत्व भी करें।

यजुर्वेद के एक मंत्र के अनुसार शब्द का निर्माण करने वाली तीन देवियां है :-

त्रिस्त्रो देवर्बहिरेदं सदन्त्विडा सरस्वती भारती। मही गृणाना।।

आर्थत् राष्ट्र का निर्माण करने वाली तीन देविया :- मातृभाषा, मातृसंस्कृति और मातृभूमि। महिलायें राष्ट्र की केवल नींव ही नहीं राष्ट्र रुपी भवन को बनाने में सजाने, संवारने और निरवारने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। राष्ट्र की भाषा, भूमि व संस्कृति से ही राष्ट्र का निर्माण होता है।

भारतीय वैदिक संस्कृति में नारी को बहुत सम्मान दिया गया है।

मातृ देवो भव, पितृदेवो भव, आचार्य देवो भव।

मातृमान् पितृमान् आचार्यवान् पुरुषो वेदः

सभी स्थानों पर माता ही राष्ट्र के निर्माण और उन्नति में महिलाओं का प्रथम योगदान व स्थान है। महिलाएं राष्ट्र की कर्णधार हैं।

ईश्वर ने नारी की शारीरिक क्षमता के साथ मानसिक क्षमता को भी अधिक सबल एवं संतुलित बनाया है। काम, क्रोध, लोभ, मोह पर स्त्रियों का अधिक नियंत्रण रहता है। महिलाओं का अधिक से अधिक शिक्षित होना अनिवार्य है। महिलाएं सबल एंव सजग होकर देश का उद्धार कर सकती हैं।

महिलाओं का परिवार व समाज में सहभागितापूर्ण सम्बन्ध हों। मार्ग में आने वाली तमाम बाधाओं को दूर कर सकें। इसी सन्दर्भ में नोबेल पुरस्कार से सम्मानित प्रोफेसर अमर्त्यसेन ने अपने विचार अपनी पुस्तक "India Economic Development and Social Opportunity." में व्यक्त किए। जिसके अनुसार नारी सशस्तिकरण से महिलाओं के साथ पुरुषों व बच्चों पर भी सकारात्मक असर पड़ता है।

स्वतंत्रता आंदोलन के साथ ही देश में प्रगतिशील विचारें का प्रसार होने लगा। देश को गुलामी की जंजीरों से मुक्त कराने के साथ भेदभाव रहित समाज की स्थापना पर भी जोर दिया जाने लगा। भारतीय संविधान में इन विचारो को सम्मिलित करते हुए महिला, पुरुष अमीर, गरीब तथा साक्षर निरक्षर सभी को सुरक्षा प्रदान की गई। विधि के समक्ष समता तथा शोषण मुक्त समाज की स्थापना के लिए कटिबद्ध हमारे संविधान निर्माताओं ने सभी को सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक न्याय देने का आश्वासन देते हुए संविधान की प्रस्तावना में ही यह स्पष्ट कर दिया कि संविधान के समक्ष स्त्री व पुरुष मेंभेद नहीं है।

भारत में महिलाओं के अधिकारों लिये सन् १८१८ में राजाराम मोहन राय ने संघर्ष किया था। उन्होंने सती प्रथा का विरोध किया। प्रारम्भ में कुछ रूढि वादियों ने उनका विरोध किया। किन्तु कई वर्षों तक अनवरत प्रयास करने

पर सन् १८२९ में ब्रिटिश संसद के द्वारा सती प्रथा पर रोक लगाने वाला अधिनियम पारित किया गया। भारत में महिलाओं के अधिकारों के संरक्षण की दिशा में यह प्रथम प्रयास था।

भारतीय संविधान में महिलाओं की पुरूषों के समान ही आजीविका के अवसर प्राप्त कराने का अधिकार दिया गया। इस के साथ ही महिलाओं के हितों को संरक्षित करने का प्रयास किया गया है।

स्वतंत्रता के पश्चात से ही देश में महिलाओं के सशक्तिकरण की दिशा में केन्द्र सरकार द्वारा समय समय पर प्रयास किए गए।

घरेलू उत्पीड़न से सुरक्षा हेतू शारिरिक, मानसिक, मौखिक, आर्थिक तथा यौन उत्पीड़न सहित सभी तरह की पारिवारिक हिंसा से संरक्षण प्रदान करने का प्रावधान किया गया।

साक्षरता किसी भी देश के विकास का एक महत्वपूर्ण पहलू होने के साथ ही समग्र सामाजिक विकास का पैरामीटर है। स्वतंत्रता के पश्चात स्त्रियों की शिक्षा शहरी क्षेत्रों के साथ ही ग्रामीण क्षेत्रों में भी विकसित हुई। इसके अतिरिक्त समय-समय पर राष्ट्रीय साक्षरता मिशन, सर्व शिक्षा अभियान, कस्तूरबा गांधी बालिका छात्रवृत्ति योजना, बालिका छात्रवृत्ति योजना प्रारम्भ की गई। जिसके सकारात्मक परिणाम परिलक्षित हुए।

आज महिलायें देश की विभिन्न सामाजिक, आर्थिक , राजनीतिक गतिव्विधयों में समान रूप से भागी बन रही है। साथ ही अपनी उच्च प्रबंधकीय क्षमता का प्रदर्शन एवं नेतृत्व भी कर रही है। सशक्तिकरण की दिशा में भारतीय महिलाओंका कदम अब पुरूषों की बैसाखी का मोहताज नहीं रहा। महिलाओं में ईश्वर की कृपा से अपार सामर्थ्य एवं क्षमता निहित है।

महिलाओं में एक बहुत बड़ी ताकत एवं शक्ति है। समस्त संसार देश, जाति का भविष्य निर्माण महिलाओं से ही होता है। आर्य समाज के प्रवर्तक महिर्षि दयानंद ने प्रथम उद्घोष किया था कि यदि हम नारी की शिक्षा के अधिकार से ही वंचित कर देंगे। तो यह समझना कि आनेवाली संततियों में आदर्श उत्पन्न होने की सभावनाएं ही समाप्त हो जायेगी।

इसलिए नारी का शिक्षित होना अत्यंत आवश्यक है। उन्नति के पथ पर चलते हुए उसे मार्ग के अवरोधी व षडयन्त्रों से भी सावधान रहना होगा/नारी का सतीत्व सदैव से ही सीता की भांति अखंडित रहा है। वह मंदिर में जलते हुए दिये की भाति पवित्र व उज्जवल है। सीता की धवल छवि पर संदेह करना भी पाप और अपराध है।

एक गीतकार ने लिखा है कि,

नारियां देश की जाग जायें अगर। देश खुद ही दबलता चला जायेगा।।

शक्तियां जागरण गीत गायें अगर। हर हृदय ही मचलता चला जायेगा।।

नारी देश की शान है। नारी निर्मात्री है, प्रथम गुरू है। यदि नारी ना होती तो यह समस्त संसार शमशान तुल्य होता। पति के लिए चरित्र, सन्तान के लिये ममता, समाज के लिये शील, विश्व के लिये दया, जीव मात्र के लिय करूणा संजोने वाली महाप्रकृति का नाम ही नारी है और नारी का अपमान पराशन्ति का अपमान है। जिससे मानव का पतन होता है। अतः उसे स्नेह व सम्मान दें।

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता।

अर्थात जहां नारी का सम्मान होता है वहां पर देवता रमण करते हैं। जहां नारी का अपमान होता है वहां पर समस्त कार्य अकारथ हों जाते है।

प्राचीन काल में स्त्रियां बहुत विदुषी होती थी। गार्गी, मैत्रेयी, अपाला, रामायण काल में सीता, महाभारत काल में द्रौपदी, गांधारी एवं शंकुतला अत्यन्त विदुषी देवियाँ थी। जो कि हर प्रकार की शिक्षा दीक्षा में पारंगत थी।

गृहस्थ का आधार भी सन्नारी, सद्गृहिणी, वत्सला माता, स्नेहिल बहिन तथा प्रेम मे पगी पत्नी होती है।

यही कारण है कि नारी की महिमा उसके गौरव तथा उसके महत्व का निरूपम करने में मनु ने अपनी कलम का चमत्कार दिखाया है। नारी की महिमा के निरूपम जो श्लोक मनु ने बताये है निम्न हैं :- सन्तुष्टो, भार्यया भर्ता भर्त्रा भार्या तथैव च, स्त्रियां तु रोचमानंय, पूजिता भूषधितव्या, यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, शोचन्ति जामयोयत्र, तस्मादेता, सदा पूज्या तथा पूजनार्थ महाभागः पूजा ही गृहदीप्त्येः आदि।

भारत की देवियों और विदूषियों का इतिहास बेमिसाल रहा है। उन महान महान नारियों के गौरव की गाथा गाता है। भारत की नारी को फिर से अपने उसी स्वरूप को पहचानना होगा। देश की बिगड़ी हुई दशा को सुधारने के लिये से लक्ष्मीबाई, रानी पद्मनी, झलकारी, रानी दुर्गावती जैसी वो वीरांगनाओं की भांति अपना जौहर दिखाना होगा जो कि सिंहनी की भांति आगे बढ़ती ही रही। अत्याचारियों से डर कर पीछे नहीं हटी।

किसी गीतकार ने कहा है :-

ए मातृशाक्ति जाग तू होश अब संभाल। जागेगें भाग्य देश के होंगे सभी निहाल।।

आज नारी कामयाबी की ओर अग्रसर है। अब उसकी दुनिया पूर्ववत नहीं रही। उसके सपनों को जैसे पंख मिल गये है। भारतीय नारी का यह सफर अनवरत जारी रहेगा।

- कु. वैशाली आर्या
मकान ६/१४३३, जवाहर पार्क,
बेहर रोड, सहारतपुर (उ.प्र.)

* * * * *

भारत पुत्र जग में गूंजेगा, गौरव गान तुम्हारा निज प्राणों को आहुत करके मां को दिया सहारा। तन-मन-धन सर्वस्व भेंट कर तुमने देश जगाया। धन्य धन्य है जननी जिसने भगत सिंह सा जाया स्वतंत्रता के लिये स्वीकारी हंस कर तुमने फांसी पाकर तुम सा अगर सेनानी, हर्षित रानी झांसी.

जिन्दगी की सारी व्यवस्थाएं रजिर्वेशन की तरह है।।
आपको बम्बई जाना है और ट्रेन से जाना है तो आप रिजर्वेशन कराते हैं।
रिजर्वेशन का मतलब है कि आपकी सीट पक्की हो गई।
अब आपकी सीट पर दूसरा नहीं बैठ सकता।
बैठा भी हो तो उसे उठना पड़ता है।
आप ट्रेन में चढ़े, वहां देखा कि आपकी सीट पर कोई गांव का आदमी बैठा है।
आपने कहा -उठो भाई!
यह मेरी सीट है। वह भोला आदमी उठकर दूसरी जगह बैठ जाता है।
आपका गन्तव्य आया और आप ट्रेन से उतरने लगे,
तो वह आदमी कहता है; भाई साहब!
यह अपनी सीट लेते जाइये, क्योंकि आप तो कह रहे कि यह सीट मेरी है।

अक्षर अमर रहें

– राष्ट्रपति सम्मानित–डॉ०सुद्युम्न आचार्य

इस व्यापक विश्व में उपलब्ध असंख्य प्रकार के पदार्थ कुछ मूल तत्त्वों से विनिर्मित हैं। आधुनिक विज्ञान के विद्वानों ने अपने व्यापक अध्ययन से इन तत्त्वों की १०८ संख्या मानी है। यह गिनती निरन्तर बढ़ती जा रही है। इन तत्त्वों से अनेकानेक पदार्थ ईश्वर की कारणता से उत्पन्न हुए हैं। इनके सहयोग से मनुष्य ने जितने प्रकार के यौगिक तथा मिश्रण बनाए हैं, उन्हें गिन पाना तो स्वयं मनुष्य के सामर्थ्य के बाहर है।

इस भौतिक विश्व के अलावा एक और भी दुनियाँ है, वह है– अक्षरों से विनिर्मित होने वाली दुनियाँ। इनकी संख्या तो भौतिक तत्त्वों की संख्या से कहीं कम है। संस्कृत में ६३ अक्षर माने जाते हैं तो इंग्लिश में २६ अक्षरों से ही काम चलाया जाता है। फिर भी अक्षरों से निर्मित दुनिँ पूरे भौतिक विश्व से समानान्तर दुनियाँ बन सकी है। भौतिक विश्व के रचयिता को प्रजापति कहा जाता है, तो अक्षर–विश्व के प्रणेता को वाचस्पति भूषण प्रदान किया गया है। भौतिक विश्व के समान इस अक्षर–विश्व की यह विशेषता बताई गई है कि इसके उत्पादों की कोई गिनती नहीं कर सकता–

वाचस्पतिसहस्त्राणां सहस्त्रैरपि यत्नतः, निबद्धा सा क्षयं नैति प्रकृतिर्जंगतामिव।।

इन दोनों में इस विशेषता को देखते हुए प्राचीन विद्वानों ने विश्व के सर्वप्रथम विभाजन के रूप में दो ही पदार्थ माने, वे हैं–नाम और रूप। उपनिषद् का एक सुन्दर वचन इस प्रकार है–

यथा नद्यः स्यन्दमाना समुद्रेऽस्तं गच्छन्ति नामरूपे विहाय।

जिस प्रकार नदियाँ बहती हुई अन्ततः समुद्र में अपने नाम–रूप को छोड़ कर विलीन होती हैं, उसी प्रकार प्रलयकाल में विश्व भी। इसके विपरीत सृष्टि–काल में यह विश्व प्रथमतः नाम–रूप को धारण करके उत्पन्न होता है। इस प्रकार एक ओर सम्पूर्ण दृश्य, स्पृश्य भौतिक पदार्थ, दूसरी ओर अकेला नाम अथवा अक्षय–ये दोनों समान स्तर के सिद्ध होते हैं। आगे चल कर विद्वानों ने पद–पदार्थ, वाक्–वागर्थ आदि कहते हुए इसी मान्यता को परिचालित किया है।

इस मान्यता के अन्तर्गत भौतिक विश्व के तत्त्व नित्य हैं, जब कि इनसे निर्मित होने वाले यौगिक पदार्थ नश्वर हैं। इसी प्रकार अक्षर जगत् के अक्षर नित्य हैं, परन्तु इनसे बनने वाले शब्द नाशवान् हैं। गीता के एक सुन्दर श्लोक में इन दोनों तथ्यों को एक साथ प्रकट किया गया है–

द्वामिमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च। क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते।।

यहाँ कहा है कि इस विश्व में दो प्रकार के ही पदार्थ हैं– नाम, रूप के समकक्ष क्षर और अक्षर। एक व्याख्या के अनुसार क्षर सम्पूर्ण व्यावहारिक विश्व है, अक्षर मूल तत्त्व कूटस्थ पदार्थ। अन्य व्याख्या के अनुसार क्षर सम्पूर्ण विनिर्मित शब्द हैं, जबकि अक्षर शब्द और भाषा के लघुतम घटक है।

यह मान्यता इतनी सुदृढ हुई कि इस घटक का स्थायी नाम अक्षर प्रदान किया गया है। महाभाष्य के एक सुन्दर श्लोकवार्तिक में कहा है कि–

अक्षरं न क्षरं विद्यात् अश्नोतेर्वा सरोऽक्षरम्।

अर्थात् अक्षर नाम पड़ने का कारण यह है कि न तो कभी वह क्षीण होता है, न विनष्ट होता है।

इसकी व्याख्या करते हुए इस प्रकार कहा गया है कि–

सोऽयमक्षरसमाम्नायो वाक्समाम्नायः पुष्पितः फलितश्चन्द्रतारकवत् प्रतिमण्डितो वेदितव्यो

ब्रह्मराशिः। सर्ववेदपुण्यफलावाप्तिश्चास्य ज्ञाने भवति, मातापितरौ चास्य स्वर्गे लोके महीयेते। - ज्ञभञ् सूत्र पर महाभाष्य

अर्थात् यह अक्षरसमूह फूल और फल वाला विशाल कल्पवृक्ष है, चाँद और तारों से सजा हुआ ब्रह्माण्ड है। इसके ज्ञान से सभी वेद, वेदांगों के पुण्य फल की प्राप्ति होती है। इसके जानने वाले के माता-पिता स्वर्ग लोक में पूजे जाते हैं।

इस उद्धरण की विशेषता यह है कि इसमें इस भौतिक विश्व के समानान्तर अक्षर-जगत् की परिकल्पना की गई है।

अक्षर-नित्यता के मौलिक सिद्धान्त की स्थापना का श्रेय सर्वप्रथम मीमांसा दर्शन को प्राप्त है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें अन्तर्जगत् से बाहरी भौतिक दुनियाँ में अक्षरों को आकाश के समान विभु रूप से कूटस्थ नित्य सिद्ध किया गया है। जब कि अन्य सभी दर्शन इस प्रकार कि नित्यता मानने में संकोच करते हैं। स्थिति कुछ भी हो, पर यह स्पष्ट है कि इस प्रकार की नियत्ता के अटूट सिद्धान्त से ही अतिविशाल वेद शब्द राशि की सुरक्षा हो पाई है। यदि कोई पूछे कि कहाँ से आई वह दृढता की पराकाष्ठा जिसने युगों-युगों तक वेदपाठियों की पीढ़ियों को मात्र वेदपाठ करते हुए पूरा जीवन बिताने की प्रेरणा दी है तो उसका उत्तर इन सिद्धान्तों में निहित मानना होगा।

इन अक्षररूपी ईंटों से कितना बड़ा समानान्तर अमूर्त विश्व-वाङ्मय अर्थात् वाणी का विशाल महल तैयार हो सकता है, इसकी कोई जल्दी कल्पना भी नहीं कर सकता। गणित की सहायता से हम कुछ आभास प्राप्त कर सकते हैं।

अक्षरों में व्यञ्जनों की संख्या ३३ है तथा १० स्वर हैं। इनमें स्वरों की सहायता के बिना किसी व्यञ्जन का उच्चारण नहीं होता। अतः १० स्वरों की सहायता से निर्मित होने वाले एक-एक व्यञ्जन के दस-दस घटक मान सकते हैं। इस प्रकार कुल ३३गुणा१०=३३० भाषा के व्यवहारिक घटकों की संख्या मान सकते हैं।

इन ३३० घटकों को आगे-पीछे रख कर कितने एक, दुक्के, तिक्के, चौके वाले शब्द तैयार हो सकते हैं, इसे क्रमचय के गणित से जाना जा सकता है। इसका वर्णन लीलावती आदि ग्रन्थों में भी अपनी रीति से किया गया है। इसके अनुसार -

३३० घटक के एक एक ३३०

३३० घटक के दुक्के - ३३०पी३-३३०(३३०-१)(३३०-२)३३०गुणा३२९गुणा३२८ = १०८५७०

३३० घटके केतिक्के-३३०पी३-३३०(३३०-१)(३३०-२)३३०गुणा३२९गुणा३२८= ३५६१०९६०

३३० घटक के चौके-३३०पी४-३३०(३३०-१)(३३०-२)(३३०-३)=३३०गुणा३२०गुणा३२८गुणा३२७=

११६४४७८३९२०

११६८०५०३७८०

इतनी भारी भरकम संख्या केवल ३३० घटक अक्षरों द्वारा बनाए जा सकने वाले शब्दों की प्राप्त होती है। इंग्लिश जैसी समृद्ध भाषा की ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी में २.५०,००० शब्द हैं। प्रकटतः, यह उपरिलिखित संख्या किसी भी भाषा के शब्दों से अधिक है। यह ध्यान देने योग्य है कि इस गणना में केवल स्वर, हलन्त अक्षर, सुर, स्वर, काकु, द्रुत, विलम्बित आदि वृत्तियों से बनने वाले उपभेदों को नहीं जोड़ा गया है। इनमें पाँच या उससे अधिक घटकों से जुड़ने पर इस वाणी के महल के शब्दों की संख्या इतनी अधिक है, जिसके समक्ष समुद्र-तट में बालू के कणों की संख्या भी तुच्छ है। यदि इनसे बनने वाले उपवाक्यों, वाक्यों को जोड़ना चाहें, तब तो यह कभी न गिनी जा सकने वाली संख्या बनेगी। इस प्रकार यह अनन्त होगी।

आर्य समाज ही काळाजी गरज

एकोणीसावे शतक! वैदिक धर्म भारतीय सभ्यता आणि समाज याची अवस्था अत्यंत दयनीय झाली असल्याचा काळ! एकीकडे शुद्ध, सनातन सरळ अशा वैदिक धर्माची पवित्रता साफ संपून त्याची जागा कपोलकल्पित ननाविध मतांच्याव अवडंबरांनी आणि मलीन व कलुषित झालेल्या विचारांनी घेतली होती, एखाद्य सरितेन खळखळाटोन व्यापून टाकलेल्या पर्वतराजीस पार पार करून सपाट प्रदेशात प्रवेश करावाा, प्रवासाला थोडीसी स्थिरता प्राप्त करावी व त्याचा परिणाम त्या सरितेतील स्फटिकासारख्या निर्मळ, पवित्र जलात भोवतीचा गाळ मिसळून जशी अपवित्र व्हावी, तशी स्थिती वैदिक धर्माचीही झाली होती. वैदिक धर्माच्या पवित्र जलात मिथ्याविश्वास, अंधश्रद्धा, भानामती, जादुटोणा, जातिप्रति, स्पृश्यास्पृशतमा अशा अनेकविधी मालिन्याने अक्षरसः दुर्गंधपूर्ण अशी स्थिती झाली होती.

पंच महायज्ञेने पवित्ररूप सोडून वशीकरणात सारा मानव गुरफटून गेला होता. सर्वव्यापक, सर्वांतर्यामी परमेश्वर असे तोंडाने म्हणावयाचे व दुसरीकडे त्याला चार दिवसारींत कोंडून ठेवायचे असा प्रकार सुरू झाला. त्या निराकार परमेश्वराची जागा साकार मानवकृती मूल्यांना घेतली गेली. त्याची उपासना करण्याचा दिखावा सुरू झाला. त्या दैवादिकांच्या मूर्त्यांच्या साक्षीने राजरोसपणे दारू, चरस, गांजा यांसारख्या मदकप्रत्यांनी घेतली, सारी देवालये याचे केंद्रबनले; किंबहूना अशा उन्मत, दुराचारी, निरक्षर पुजाऱ्यांनी या देवस्थानांची प्रमुख जागा घेतली. पुजारी हे आता पूजेचे अरि अर्थात शत्रू बनले. खऱ्या तीर्थांची जागा नदी किनारे आर्दींनी घेतली. वैदिक वर्णव्यवस्था लुप्त झाली. ज्ञानाचे उपासक व प्रचार-प्रसारक म्हणजे ब्राह्मण, स्वाभाविकपणे इतरांच्या संरक्षणासाठी झटणारा तो क्षत्रिय, समाजाची गरज लक्षात घेऊन आवश्यक त्या साधनांचा पुरवठा करणारा तो वैश्य व सेवापरायणतेचा गुण असलेला शूद्र! प्राचीन समाज रचना पद्धतीला तिलांजली देऊन त्यांचे समाजात कप्पे बनवले गेले ज्ञानप्रसार करणाऱ्याच्या उदरी जन्माला आला म्हणून ज्ञानाचा उपासक नसलेला संपूर्णतः अज्ञानी देखील ब्राह्मणच मानला जाऊ लागला. यातुनच जातिप्रभा, जन्मजात अस्तित्वात आणली गेली. सेवाभाव असलेल्या व्यक्तींच्या मुलांनीही शूद्रच मानले जाऊ लागले व त्यास कायम ज्ञानापासून दूर ठेवण्याचा प्रयत्न केला जाऊ लागला. एवढेच नाही तर त्यांना अस्पृश्य मानले जाऊ लागले. त्यांना वाळीत टाकले जाऊ लागले. पशूपेक्षाही हीनतेने वागविले जाऊ लागले. महिलांना चूल आणि मूल एवढ्या सीमेतच ठेवले गेले. इतरांना वेदज्ञ-मनापासून दूर ठेवले गेले. आानाच्या अंधःकारात सारा समाज गुरफटला गेला. तर्क, विचार शक्ती यास कसलेच स्थान राहिले नाही. धर्माच्या नावाखाली सर्वत्र चुकीच्या रूढी परंपराना उधाण आले. याचा फायदा परकीयांनी न्यायला सुरूवात केली. सर्व दिशेने भारतावर आक्रमणे होऊ लागली. याचा फायदा धूर्त युरोपियांनीही घेतला. सारा भारत व भारतीय जनता गुलामगिरीच्या खोल गर्तेत लोटली गेली.

भौतिक, रसायण, जैव्रविज्ञान, खगोलशास्त्रात, स्थापत्य, शिल्पविद्या, संगीत, वैद्यक, गणित आदी विद्यांच्या बाबतीत युरोपीयन आपलीच मक्तेदारी समजू लागले. रुढी, अंधश्रद्धा, मूर्तिपूजा आदी येुपियानांचे चेष्टेचे विषय झाले. ते उघड टवाळी करू लागले. याची परिणती भारतीयांच्या मुस्लमी व ख्रिश्चन धर्मात प्रवेश यांनी घेतली. यासाऱ्याचा परिणाम आर्य जाती क्षीण बनण्यात आला. आर्य सभ्यतेचा पावला - पावलांवर पराभव होऊ लागला. एका उच्चभ्रू मानल्या जाणाऱ्या गर्भश्रीमंत कुटुंबात जन्मलेल्या मूलशंकर या नावाने ओळखल्या जाणाऱ्या बालकाच्या मनावर विलक्षण परिणाम झाला. सच्च परमेश्वर व सत्यज्ञानाच्या शोधार्थ या बालकाने सुखाचा, घराचा त्याग केला व सत्यज्ञानाच्या शोधार्थ भारतभर भटकत राहिला. यासाठी बालवयातच संन्यास दीक्षाही घेतली व

दयानंद सरस्वती बनले. याच भ्रमंतीत प्रज्ञाचक्षू स्वामी विरजानंद सरस्वतींची भेट झाली. वेदातील खऱ्या ज्ञानाचा व त्यातील सूक्षम व्याकरणाचा अभ्यास करता आला. सर्व आयुष्यभर वेदांतील सत्याज्ञानच समाजासमोर ठेवण्यांचा संकल्प केला. गुरू विजजांनदानी हीच गुरूदक्षिणा दिली. अनंत संघर्षाला तोंड देत धर्ममार्तंडाबरोबर शास्त्रार्थ केले. भव्य व देखणी शरीयष्टी, भारदस्त, प्रभावी व मधुर वाणी यामुळे धर्माचे चेले म्हणवल्या जाणाऱ्या धर्मगुरूंचाही शास्त्रार्थात पराभव होऊ लागला. हे काम आणखी वेगाने भारतभर फैलावण्याची गरज निर्माण झाली. यासाठी एकटा माणूस किती पुरणार?. म्हणूच स्वामी दयानंदांनी (मूळचे मुलशंकर) सागरतीरी वसलेल्या मुंबापुरीतील (सध्याची मुंबई)गिरगावात डॉ. माणिकचंदजी यांच्याव बागेत चैत्र शुद्ध व प्रतिपदा म्हणजेच गुढीपाढवा या दिवशी आर्य समाजाची स्थापना केली. सुरूवातील २८ नियम आधारित केले. परंतू त्यातील पुनरावृत्ती टाळून दहा नियम निर्धारित केले. आर्य समाजाचे दहा नियम कोणत्याही जात, पंथ, मतमतांतर यात गुरफटणारे नाहीत, ये नियम साऱ्या विश्वासत्ल्या मनव समाजासाठी उपयुक्त व जीवन सुधारणेचे नियम आहेत. ते शुद्ध व वैज्ञानिकतेला बळ पोहोचविणारे आहेत. सर्व समाजासाठी हितकारक आहेत. स्वामी दयानंद आपल्या नावाने कोणताही समाज व संस्था उभारली नाही. त्यांनी सांगितले की, त्यांच्या नावाने कोणताही पंथ नको, देवालय नको, त्यांच्या मूर्ती वा पुतळे कोठेही उभारले जाऊ नयेत. ते म्हणायचे, ज्या विचारांचा पुरस्कार केला, ते विचार माझे नाहीत, प्राचीन वेदग्रंथात जे ज्ञान, जे विज्ञान, जे आध्यात्म सांगितले आहे. ते मी प्रकाशात आणण्याचे काम केले आहे. हे परमेश्वराचे आहे, माझे नाही.

स्वमी दयानंदाचा हा आदेश ही पताका घेऊन आम्ही आर्य समाजी किती नेटाने पुढे जाऊ इच्छितो? खरेच आम्ही हे आव्हान स्वीकारायला तयार आहोत का? हाच प्रश्न आम्हांला विचारत आहे, यासाठी पुढे सरसावणार आहोत का?

– रमेश ठाकुर (गुंजोटीकर)
३६, यज्ञ, इंद्रप्रस्थ गृहनिर्माण संस्था,
गारखेडा, औरंगाबाद

* * * * *

– कार्यालयीन आदेश –

आर्य प्रतिनिधि सभा मध्यप्रदेश व विदर्भ से संबंद्ध समस्त आर्यसमजों को सूचित किया जाता है कि, बहुत जल्द सभा के त्रैवार्षिक चुनाव वर्ष २०१९-२०२१ के लिए संपन्न होने वाले हैं। अतः आप आपकी आर्य समाज की चित्रावली, दशांश, लेखा-जोखा ३० मार्च २०१९ तक पं. सत्यवीर शास्त्री, प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा, म.प्र. व विदर्भ दयानंद भवन, मंगलवारी बाजार, सदर, नागपुर को सभा के पंजीकृत नियमानुसार भेजकर सहयोग करें।

पं. सत्यवीर शास्त्री प्रधान
आर्यप्रतिनिधि सभा मध्यप्रदेश व विदर्भ
दयानंद भवन, मंगलवारी बाजार, सदर, नागपुर.

चाणक्य नीति दर्पण

ते मर्त्यलोके भुवि भारभूता
मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति।।

– नीतिश. १२

जिन मनुष्यों में न विद्या है, न तप है, न दान देने की भावना है, न ज्ञान है, न शील है, न ही जीवन में कोई उत्तम गुण है और न धर्म है, वे पृथिवी पर भाररूप पशु ही हैं, जो मनुष्य के रूप में विचरण करते हैं।

किसी उर्दू कवि ने भी मनुष्य की सुन्दर परिभाषा की है–

दर्देविले पासे वफा और जज्बये ईमा होना।
है श्राधमीयत यही और यही इन्सा होना।।

मनुष्य की परीक्षा होती है कर्म से। वेद में कहा है–

अकर्मा दस्युः। – ऋ. १०/२२/८

कर्म न करनेवाला मनुष्य दस्यु है।

इसका फलितार्थ यह हुआ कि **सुकर्मा आर्य :–** शुभ कर्म करनेवाला, आचरणवान् मनुष्य आर्य है, श्रेष्ठ मनुष्य है।

गुणरूतुङ्मतां याति नोच्चैरासनसंस्थितः।
प्रासादशिखरस्थोऽपि काकः किं गरूडायते।।

मनुष्य गुणों से ही उच्चता प्राप्त करता है, ऊँचे आसन पर बैठने से नहीं। क्या राजभवन के शिखर पर बैठने से कौआ हंस बन सकता है? कदापि नहीं।

तावद् भयेषु भेतव्यं यावद्भयमनागतम्।
आगतं तु भयं दृष्ट्वा प्रहर्तव्यमशङ्कया।।३।।

शब्दार्थ–भयेषु भयों से **तावत्** तभी तक **भेतव्यम्** डरना चाहिए यावत् जबतक **भयम्** भय **अनागतम्** आया नहीं है। **भयम्** भय को **आगतम्** आया हुआ दृष्ट्वा तु देशकर तो **अशङ्कया** निशङ्क होकर उसपर **प्रहर्तव्यम्** प्रहार करना चाहिए, उसे दूर करने का उपाय करना चाहिए।

भावार्थ– आपत्तियो और संकटों से तभी तक डरना चाहिए जब तक वे दूर हैं परन्तु जब भय और संकट सिर पर आ पड़े तब शंका–रहित होकर उनपर प्रहार करना चाहिए, उन्हें दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए।

विमर्श – जबतक भय दूर है तबतक उससे डरना उचित है परन्तु जब भय, आपत्ति और संकट सिर पर आ पड़े तब डरने से उनसे **मुक्ति**=छुटकारा नहीं मिलेगा। जब भय आ गया तब कटिबद्ध होकर उस भय को दूर करने का उपाय करना चाहिए। भय उपस्थित होने पर भयभीत नहीं होना चाहिए अपितु वेद के शब्दों में कहना चाहिए–

यथा द्यौश्च पृथिवी च न बिभीतो न रिष्यतः।
एवा मे प्राण मा बिभेः।।
यथा सूर्यश्च चन्द्रश्च न बिभीतो न रिष्यतः।
एवा मे प्राण मा बिभेः।। – अथर्व. २।१५।१,३

जैसे द्युलोक और पृथिवीलोक न डरते हैं, न हिंसित होते हैं, ऐसे ही हे मेरे प्राण! तू भी भयभीत मत हो।

जैसे सूर्य और चन्द्रमा न डरते हैं और न हिंसित होते हैं, ऐसे ही हे मेरे प्राण! तू भी भयभीत मत हो।

एकोदरसमुद्भुता एकनक्षत्रजातकाः।
न भवन्ति समाःशीले यथा बदरकण्टकाः।।४।।

शब्दार्थ– एक–उदर–समुद्भूताः एक गर्भ=माता (पिता) से उत्पन्न हुए तथा **एक–नक्षत्र–जातकाः** एक ही नक्षत्र में जन्मे हुए सब बालक **शीले** गुण–कर्म–स्वभाव **में समाः** समान **न भवन्ति** नहीं होते **यथा जैसे बदरकण्टकाः** बेर और उसे काँटे समान नहीं होते अथवा जैसे बेरी से उत्पन्न हुए सब काँटे समान नहीं होते।

भावार्थ– एक ही माता–पिता से और एक ही नक्षत्र में जन्मे हुए सब बालक गुण–कर्म–स्वभाव में समान नहीं होते, जैसे बेर और उसके काँटे समान नहीं होते।

विमर्श– सब समान नहीं होते। वेद में कहा है–

समौ चिद्धस्तौ न समं विविष्टः सम्मातरा चिन्न समं दुहाते।
यमशोश्चिन्न समा वीर्याणि ज्ञाती चित्सन्तौ न समं पृणीतः।।

–– ऋ. १०।११७।६

दोनों हाथ एक समान होते हुए भी एक समान कर्म

नहीं कर पाते। एक मातावाली होती हुई भी दो बछड़ियाँ एक समान दूध नहीं देतीं दो जुडवाँ भाइयों का सामर्थ्य=बल-शक्ति भी एक जैसा नहीं होता। नातेदार सम्बन्धी होते हुए भी दो मनुष्य एक समान दूसरों को तृप्त नहीं करते अथवा एक समान दान नहीं देते।

एक और वेदमन्त्र में इस असमानता का सुन्दर प्रतिपादन किया गया है-

अक्षण्वन्तः कर्णवन्तः सखायो मनोजवेष्वसमा बभूवुः।

श्रादध्नास उपकक्षास उत्वा ह्रदा इव स्नात्वा उ त्वे ददृश्रे।।

- ऋ. १०।७१।७

आँख और कानोंवाले होते हुए सखा=एक साथ ज्ञान प्राप्त करनेवाले मनुष्य मन के वेगों में एक समान नहीं होते। कोई मुख तक जलवाले (मुख तक गहरे) तालाब के समान, कोई कक्ष=बगल तक गहरे तालाब के समान और कोई डुबकी लगाकर स्नान करने योग्य जलाशयों के सदृश देखे जाते हैं।

वेद ने कितने स्पष्ट शब्दों में और कितने उदाहरण देकर मनुष्यों की विषमता का वर्णन किया है। उपर्युक्त श्लोक वेद के एक अङ्ग का छायानुवाद मात्र है।

निःस्पृहो नाऽधिकारी स्यान्नाकामी मण्डनप्रियः।
नाऽविद्ग्धः प्रियं ब्रू यात् स्फुटवक्ता न वञ्चकः।।५।।

शब्दार्थ- अधिकारी अधिकारी **निःस्पृहः** आकांक्षा-रहित, निर्लोभ **न स्यात्** नहीं होता अर्थात् अधिकार पाकर निर्लोभ होना कठिन है, **मण्डनप्रियः** श्रृंगार का प्रेमी **अकामी न** अकाम नही होता अर्थात् वह अवश्य ही कामुक होता है **अविदग्धः** चातुर्यहीन मनुष्य, अविद्वान प्रियम् प्रिय और मधुर वचन न हीं ब्रूयात् बोलता, मधुरभाषी नहीं होता और स्फुटवक्ता स्पष्ट कहनेवाला वञ्चकः न कभी धोखेबाज नहीं होता।

* * * * *

व्यक्ति मकान बनाता है, फिर मकान को
सजाने केलिए उसमें फर्नीचर लगाता है,
गलीचे बिछाता है। अच्छा है मकान भी बना लिया,
उसे फर्नीचर से सजा भी लिया।
अब तरुणसागर का एक कहना और मानों।
बस ! अपने मन को भी सजा लो तो सचमुच में
तुम्हारी बल्ले-बल्ले हो जायेगी।
घर में एक व्यक्ति गुस्सा करता है और
दूसरा शांत रहता है, तो वह घर स्वर्ग है।
जिस परिवार केलोग हमेशा प्रसन्न रहते हैं,
वहां स्वर्ग है और जिस परिवार में लोग
हमेशा खेद-खिन्न रहते हैं, वहां नर्क है।
दूसरा गलती करे तो नजर-अंदाज कर दें
और दूसरे से गलती हो जाए तो वह उसे
सहज स्वीकार कर ले, तो घर स्वर्ग है।

स्त्री घर का निशान है। पति को उस के अनुकूल व्यवहार करनाच ाहिए। स्त्री को चाहिए कि वह अपनी सन्तानों में श्रेष्ठ, उत्तम तथा वीरता के भाव भरे अर्थात् उत्तम सन्तान का निर्माण करें। पच महायज्ञों की पूर्णतया अनुपालना करे।

सुहड़ वर्ण व्यवस्था किसी देश व समाज की भाईचारे की प्रतीक है। मनुष्यों में धन, बल, धर्म तथा बुद्धि की विभिन्नता स्वाभाविक रूप में होती है। इसका सुसंगठित स्वरूप ही मनुष्य को यथायोग्य प्रगति पर ले जाता है। मानव समाज को चार भागों में बाँटता है। चारों मिलकर एक देह बनाते हैं जिसका वर्णन ब्रह्मोहस्य मंत्र में है। अतः मानव जाति को गुण-कर्म-स्वभावानुसार चार भागों में बाँटा गया है। इसका मूल सूत्र है कर्म न की जन्म। जैसे जैसे मनुष्य बड़ा हेाता हजाता है। उसके स्वाभाविक गुणों का भी विकास होता है। गुणों के आधार पर वर्ण निश्चित हो जाता है।

ईश्वरीय वाणी सावधान भी करती है कि मैने वेद ज्ञान तुम्हें इसलिए नहीं दिया कि तुम सारा जीवन में इन वस्तुओं मे लगा दो। निःसन्देह यह वस्तुएँ मानव जीवन के लिए अत्यन्त उपयोगी तथा आवश्यक हैं परन्तु इन की प्राप्ति का मुख्य उद्देश्य कुछ और है। भोग विलास तो सभी जीव जन्तु भी करते हैं परन्तु तुम इनका उपयोग लेते हुए इन्हें मेरे अर्पण कर दो। मैंने सारी सम्पति (प्राकृति) जीवों के कल्याण के लिए दे रखी है। तुम भी जीवों के कल्याण के लिए इन को दे डालो और तुम मुक्ति के अधिकारी हो जाओगे।

अन्त में वेद कहता है, प्रकाश के मार्गों की रक्षाकर उन्हें अपनी बुद्धि से परिष्कृत कर। लाखों ज्ञानी अपने ज्ञान को अपने साथ ले जाते हैं। ऐसा ज्ञान किस काम का। वेद कहता है जयेतिष्मतः पथोरख ज्ञान मार्ग की रक्षा कर। पूर्वजों से प्राप्त ज्ञान धन की रक्षा करते हुए भावी पीढ़ी को सौंप दो ताकि शुद्धाान बढ़ता हुआ मानव जाति का मार्ग दर्शनकर, उनके जीवन को उज्ज्वल बना दें।

आज मानव ने वेदों का स्वाध्याय लगभग छोड़ दिया है। तमन्ना है कि महर्षि देव दयानन्द की तरह एक बार पुनः वेदों की ओर लौट चलो के नारे की गूंज अन्तर्राष्ट्रीय महासम्मेलन की प्रचीर से एक ऐसी गर्जन हो जो विश्व की सभी सीमाओं में कम्पन्न उत्पन्न कर दें।

वेद जो ईश्वरीय वाणी है, में सुखी जीवन जीने की कला वर्णित है। इन में सुखी और आंनन्दमय जीवन की शिक्षा है। प्रेम-मय अति सुखद जीवन की सभी सम्भावनाएँ वेद ज्ञान की अतिरिक्त अन्य कोई ज्ञान ग्रन्थ नहीं जिसमें जीवन को जीने की कला का वर्णन है।

अतः वेद पढ़ो, वेद पढ़ाओ, वेद सुना, वेद सुनाओ। जीवन जीने की कला का यही गुरूमन्त्र है।

ओ३म. शान्ति शान्ति शान्ति।

वेदों से भारत उदित हुआ, वेदों से पुनः स्वस्थ होगा।
फिर यही वेदना-व्यथा मुक्त, निर्द्वन्द, पदार्थ-मुक्त होगा।।
आओ फिर पुनः पुरातन से नूतन का परिष्कार कर लें।
वैदिक विज्ञान प्रणाली से, इस भू का सकल भार हर लें।।

-फ्लैट नं. १०१, सुमैया एन्कलेव, बी-९, ध्रुव मार्ग,
तिलकनगर, जयपुर, राजस्थान-३०२००४, मो. ८११२२०२४४९

* * * * *

वेद ही विश्व की एकमात्र धर्म पुस्तक

– स्वामी सोम्यानन्द सरस्वती

धर्म की पुस्तक को जानने के लिए सर्वप्रथम धर्म को जानना आवश्यक है। धर्म जाना जा सकता है, धर्म के लक्षण जान कर। मनुस्मृति में धर्म के लक्षण इस प्रकार कहे है :-

धृतिःक्षमा दमोऽस्तेयं शौचं इन्द्रियनिग्रहः।

धीःविद्या सत्यम्ऽक्रोधा दशकं धर्म लक्षणम्।।मनु०६-२।।

भाषार्थ- (धृति) सदा धैर्य रखना (क्षाम) निन्दा, स्तुति, मानाऽपमान, हानि-लाभ आदि दुःखों में भी सहनशील रहना (दय) मान को सदा धर्म प्रवृत कर, अधर्म से रोक देना अर्थात अधर्म करने की इच्छा भी न उठे। (अस्तेप) चोरी त्याग अर्थात बिना आज्ञा वा छल, कपट, विश्वासघात वा किसी व्यवहार तथा वेद विरुद्ध उपदेश से परपदार्थ का ग्रहण करना चोरी और उसको छोड़ देना साहूकारी कहाती है (शौच) राग-द्वेष पक्षपात छोड़ के भीतर और जल मृति का मार्जन आदि से बाहर की पवित्रता रखनी। (इन्द्रियीनग्रह) अधर्माचरणों से रोक के, इन्द्रियों को धर्म ही में सदा चलाना। (धीः) मादक द्रव्य, बुद्धिनाशक, अन्य पदार्थ, दुष्टों का संग, आलस्य, प्रमाद आदि को छोड़ के, जेष्ठ पदार्थों का सेवन, सत्पुरुषों का संग, योगाभ्यास, धर्माचरण,ब्रह्मर्य आदि शुभ कर्मों से बुद्धि का बढाया। (विद्या) पृथिवी से लेके परमेश्वर-पर्यन्त यथार्थ ज्ञान और उनसे यथायोग्य उपकार लेना, इससे विपरीत अविद्या है। (सत्य) जैसा आत्मा में वैसा मन में, जैसा मन में वैसा वाणी में, वैसा कर्म में वर्त्तना सत्य, जैसा जो पदार्थ हो उसको वैसा ही समझना, बोलना, करना। (अक्रोध) क्रोधादि दोषों को छोड़के शान्त्यादि, गुण ग्रहण करना।

इस दश लक्षणयुक्त पक्षपात रहित न्यायाचरण कर्म का सेवन चारों आश्रम वाले करें और इसी वेदोक्त कर्म ही में आप चलना संन्यासियों का और दूसरो को समझाकर चलाना विशेष धर्म है। – सत्यार्थ प्रकाश – पृष्ठ-११०

वैरोषिक दर्शन में कहा है :-

यतो अमुद्दय निःप्रिय सिद्धिः सधर्मः।।

अर्थात-जिन शुभ कर्मो से जीवन में उन्नति करते हुए मोक्ष प्राप्ति के अधिकारी बने वही धर्म हैं।

कर्म की ऐसी परिभाषा किसी भी सम्प्रदाय के पवित्र ग्रन्थ में नहीं मिलती।

मुसलमान कहते हैं। खुदा पर विश्वास लाना ही धर्म है

कोई व्यक्ति खुदा पर जो विश्वास करे परन्तु खुदा के बनाये प्राणियों का कत्ल करे, वह धार्मिक कैसे हो सकता है निश्चय ही वह अधर्मी ईसाईयों की बाइबिल कहती है ईशा पर विश्वास करो, परन्तु ईशा तो स्वयं व्यक्ति पूजा का विरोधी था जिसके लिए उसे शूली पर चढ़ाया गया।

अतः देखने में आता है कि सभी सम्प्रदाय किसी व्यक्ति विशेष ने किसी काल में उत्पन्न विशेष परिस्थितियों के वशीमूत होकर बनाये जिन्हें धार्मिक नहीं कहा जा सकता। सभी सम्प्रदाय दूसरे सम्प्रदाय को बुरा मानते हैं और रुढ़िवादी हैं। वास्तविक धर्म को जानने का पुरुषार्थ नहीं करते।

सभी सम्प्रदायों का उदय गत ४००० वर्षों में ही हुआ है उससे पूर्व वैदिक धर्म ही सम्पूर्म विश्व में मान्य और अनुकरणीयथा। वैदिक धर्म वेद पर आधारित है। वेद में सभी सत्य विद्यायें ज्ञिदित हैं। जबकि साम्प्रदायिक ग्रन्थों में मात्र सम्प्रदाय ब्रिशेष की ही प्रशंसा निहित हैं। उनमें मानव धर्म की कोई शिक्षा या विद्या नहीं है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने ऋग्वेद श्राण्य भूमिका में अनेक विद्याओं जैसे, वेदोत्यत्ति विषय, वेदविद्या विषय, वेदोक्ठ धर्म विषय, सृष्टि विद्या विषय, पृथिव्यादि लोक भ्रमण विषय, आकर्षणानुकर्षण विषय, गणित विद्या विषय, तार विद्या विषय, राज प्रजाधर्म विषय, वर्षाश्रम विषय, पञ्च-महायज्ञ विषय, पठन-पाठन विषरु आदि ५७ विषयों का उल्लेख किया है।

वेद द्वारा जीने की कला

– टंकाराश्री अरूणा सतीजा

कला का अर्थ है किसी भी वस्तु का सही तथा उचित ढंग से प्रस्तुतिकरण अर्थात् good Presentation. विश्व की कोई भी वस्तु चाहे वह सजीव हो या निर्जीव। जब तक उसको सुव्यवस्थित ढंग से संवारा नहीं जाता तब तक उस के स्वाभाविक गुणों विशेषताओं तथा बाहरी सुन्दरता पर निखार नहीं आता। ठीक इसी प्रकार किसी मनुष्य में जब तक मानवीय तथा दैव्य गुणों का विकास नहीं होता, तब तक वह किसी साधारण प्राणी से अधिक नहीं आंका जाता।

जीवन भी एक जीने की कला से ही सुशोभित ईश्वर ने अपनी सर्वोत्तम तथा उत्कृष्ट कृति मानव को बुद्धि मेधाबुद्धि, प्रज्ञाबुद्धि प्रदान कर उसकी अति सुन्दर प्रस्तुति प्रस्तुत की है।

जीवन, जीने की कला से ही सुशोभित होता है। जीवन की इस कला का वर्णन उस परमपिता परमात्मा नेअपनी वेदवाणी द्वारा समस्त विश्व के मनुष्यों के लिए चारों वेदों में सुन्दर, अनुपम, अद्‌भुत और सारगर्भित और सुव्यवस्थित विधि से मन्त्रों के माध्यम द्वारा यह उपदेश किया है। जीवन का सूक्ष्म से अति सूक्ष्म कोई ऐसा विषय नहीं जिसके बारे में वेदों में वर्णन न हो।

अन्य जीव-जन्तुओं की भांति मात्र स्वाभाविक ज्ञान मनुष्य की प्रगति एवं विकास के लिए पर्याप्त नहीं था। मनुष्य एक ऐसा प्राणी है जो सिखाने से सीखता है। ईश्वर ने मनुष्यों को अन्य जीवों की अपेक्षा अधिक बुद्धि दी है ताकि वहा प्रत्येक विषयक को सोच-विचार व चिन्तन मनन कर के उसका सदुपयोग कर सके। अन्य जीव-जन्तुओं की जीवन चर्या आज भी वहीं है जो दो अरब वर्ष पूर्व थी। परन्तु आज मानव प्रगति की चर्म सीमा को छू रहा है। यद्यपि यह सत्य है कि भौतिक आविष्कारों ने समय ओर दूरी को खत्म कर विश्व मानव को एक मंच पर लाकर खड़ा कर दिया है। यह भी सत्य है कि विभिन्न प्रकार के आविष्कारों के कारण मानव जीवन सुगत, सुखी तथा सुविधपूर्ण हो गया है। परन्तु कुछ भयंकर अविष्कारों से मानव जीवन के मूलभूत सिद्धांतों को बदल कर रख दिया है। कुछ बड़े बड़े राष्ट्र घातक हथियारों का निर्माण कर मौत के सौदागर बने हुए हैं। परु वेद कहते हैं आध्यात्मिक विज्ञान धम कोटि का विज्ञान है जो आत्मा और परमात्मा का विज्ञान है। जो वेद में स्प्ष्ट है।

जब तक मनुष्य का जीवन वेदानुकूल रहा, तब तक उसके जीवन में सुख, शान्ति और आनन्द का साम्राज्य था। राष्ट्र तथा समाज समृद्धिशाली तथा धन, धन्य, पशुधन से सम्पन्न है। महाभारत जैसे भयंकर युद्ध के पश्चात् भारतीय संस्कृति का ढांचा चरमरा गया। इन विपरीत परिस्थितियों के पश्चात् भारत की पवन धरती पर युग-पुरूष महर्षि देव दयानन्द का विर्भाव हुआ। उन्होंने सिंह गर्जना करते हुए आह्‌वान किया कि वेदों की ओर चलो ऋषि ने वेद को विस्मृति व उपेक्षा के भयंकर शंखासुर का पेट चीर पुनः मानवता के हाथों में रख दिया। सबको बता दिया कि सृष्टि के आदि में स्वयंभू परमात्मा ने वेद रूपी ऐसी दिव्य वाणी प्रगट की जो नित्य है। ईश्वर नित्य है इसलिए उसकी वेदवाणी भी नित्य है।

तन्तुं तन्वन--------दैवयं जनम्।। (ऋ १०/५३/६)

उपरोक्त वेद मन्त्र के माध्यम से वेद आदेश करता है- मनुर्भव- मनुष्य बन ईसाई, मुसलमान, बौद्ध तथा अन्य कोई मत बन। मनुष्य बनने पर ही तो विश्व-संसार तेरा परिवार होगा। सारे कुटुम्ब से प्यार करना ही तो सच्चा मानव धर्म है। कुटुम्ब में समता का साम्राज्य होता है विषमता का नहीं। समता को स्थिर रखने के लिए स्नेही का व्यवहार करना होता है। वेद कहता है, हम सबको स्नेही आँखों से देखें। मनुष्य को अपने स्वयं के प्रति परिवार के प्रति, समाज के प्रति, राष्ट्र ही नहीं बल्कि प्राणीमात्र के प्रति क्या-क्या कर्तव्य हैं जिससे वह स्वयं भी सुखी रह सके

और दूसरों को भी सुखी बना सके। वेद हमें जीवने की कला सिखाता है। हम अपना शुद्ध विचार, शुद्ध व्यवहार, शुद्ध आचार, शुद्ध आहार रखकर अपने जीवन को पवित्र बना चारों पुरूषार्थ-धर्म, अर्थ, कम, मोक्ष को प्राप्त करते हुए मुक्ति पद को प्राप्त कर सकते हैं। अतः सदा सतत वेदों को स्वाध्याय करते रहे।

हम सब उस परमपिता परमात्मा की सन्तान हैं। इस नाते हम सब भाई बहिन हुए की नहीं। भाई को भाई से डर नहीं होता बल्कि भाई को देखकर मन हर्षित हो उठता है। आओ विश्व संसार को भाई बनाएँ। परस्पर भय को भगाएँ। सर्वत्र निर्भय निष्कटक आएँ और जाएँ। बताओं वेद का मनुर्भव कहना कल्याणकारी है या नहीं।

जहाँ भगवान वहाँ कल्याण-प्रभु प्राप्ति के लिए सभी शास्त्रकार योगानुष्ठान का उपदेश करते हैं। योग साधना से शारीरिक, मानसिक स्वस्थ्य की सिद्धि होती है। क्यों? वेद इसका उत्तर देता है। जहाँ प्रभु हो, वहाँ सदा भद्र रहता है। योग साध्ना से प्रभु का मेल होता है। प्रभु कल्याणकारी है। वह सभी प्रकार के दुःख क्लेशों से दूर रहता है। उसकी प्राप्ति से सब दुर्भावनाएँ भाग जाती हैं। जहाँ शान्ति होती है, वहीं सभ्यता विद्या, धर्म, धन, एश्वर्य आदि शुभ गुणों की वृद्धि होती है। भगवान से बढ़कर और कौन सा शान्ति निकेतन हो सकता है। आनन्द की प्राप्ति के लिए ईश्वर को सदा अपनी आत्मा में अनुभव करने का प्रयत्न करना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति को सार्थक जीवन जीने के लिए ऋतज्ञान, ऋतगामी होना चाहिए। अर्थात् सृष्टि के सब नियमों की अनुपालना करनी चाहिए।

महर्षि से जब पूछा गया कि मनुष्य किसे कहते हैं? उन्होंने बताया जो दूसरों के दुःख सुख को अपना दुःख-सुख समझता है, वही सच्चा मानव है। परन्तु वर्तमान समय में ऐसा प्रतीत होता है कि मानव एक दूसरे के कल्याण के लिए नहीं संहार के लिए पैदा हुआ है।

स्वयं के पश्चात् मनुष्य का दूसरा महत्वपूर्ण अंग है समाज जन्म लेते ही उसका सदस्य बन जाता है। समाज व्यक्तियों पर निर्भर है और व्यक्ति उन्नति समाज के आश्रय पर। व्यक्ति की उन्नति ही नहीं परन्तु उसका निर्माण भी समाज में होता है। (ऋ १०/१०/२) के अनुसार समाज के सारे सदस्य एक भाव वाले होने चाहिए। सदास बुद्धिपूर्वक कर्म करें। परस्पर प्रेम तथा सहयोग की भावना ऐसी हो कि कोई भी पराया नहीं लगे। सामाजिक संगठन यज्ञ का रूप धारण करने वाला हो जहाँ ज्ञानवृद्धों, गुणवृद्धों का यथायोग्य सभी मनुष्य सम्मन करें। उत्तम पुरूषों का सत्संग सदा मिलता रहे। ज्ञानदान, अन्नदान, वस्त्रदान आदि का सदाव्रत चलता रहे। समाजमें ऐसी सुन्दर व्यवस्था हो कि कोई भूखा नंगा न हो, काई अपठित व अज्ञानी न हो।

समाज में किसी की हत्या व हिंसा न हो। सभी मनुष्यता की परिधि में चलते हुए सुखपूर्वक जिएँ। इसी भावना से सबका कल्याण होगा। वेद इसी को ही जीवन जीने की कला का नाम देता है।

सामाजिक उन्नति ही प्रत्येक राष्ट्र की उन्नति का आधार होती है। यजु. २२/२२ मंत्र के माध्यम से वेद में आदर्श राष्ट्र की कितनी सुन्दर कल्पना की गई है। देश में ज्ञानी घ्यानी महापुरूषों की प्रचुरता होनी चाहिए। अविद्या का नाश। विद्या की उन्नति हो, राष्ट्र की रक्षा के लिए प्रचण्ड क्षत्रियों की कभी कमी न हो, सामान्य प्रजा भी धन धन्य से समृद्ध एवं वीर हो, स्त्रियाँ बुद्धिमति एवं नागरिकात के गुणों से भरपूर हों। पशु धन तथा नाना प्रकार के धनों से राष्ट्र समृद्ध हो। ऐसे समृद्ध राष्ट्र, राज्य तथा समाज में कौन मनुष्य सुखी नहीं होगा।

किसी भी मनुष्य समाज व राष्ट्र की रीढ़ गृहस्थ होता है। गृहस्थ के सम्बंध में बहुत ऊँचें तत्व है। जैसे तमस्मेरा----गप्सु (ऋ २/३५/४) के अनुसार युवा ओर युवति का विवाह होना चाहिए। दोनों के हृदयों के भाव शुद्ध एवं पवित्र हों। पुरूष परिवार की दीप्ति का कारण होना चाहिए और परिवार के तेज का कारण बनें।

अथर्व० १४/१/१४ में वर्णित है कि ऐसी स्त्री से विवाह करना चाहिए जो बन्ध्या न हो, मनस्विनी हो, गर्भ धरण में समर्थ हो। पुरूष भी वीर्यवान हों क्योंकि सन्तान उत्पन्न करना विवाह का मुख्य प्रयोज़न है। एक समय में दो पत्नियों का भी निषेध है।

सामान्य मनुष्य की कल्पना में यह तथ्य नहीं आता अदृश्य, अस्पश्य अमूर्त वाणी इस अनन्त प्रकार से हमारे समक्ष उपलब्ध होगी। परन्तु इस देश की मनीषा की यही विशेषता रही है कि इसने नाम और रूप में से नाम का वरण किया। अन्य देशों के लोगों ने रूप अर्थात् रंग-बिरंगी लोक लुभावन हृदश्य, स्पृश्य पदार्थों को सुरक्षित रखने के लिये सब कुछ किया। मिस्त्र के पिरामिड तथा इस प्रकार की मूर्तियाँ इस रूप की सुरक्षा में प्रणाम हैं। परन्तु भारत में इस प्रकार की सुरक्षा के प्रमाण नहीं मिलते। क्योंकि उन्होंने अपनी सम्पूर्ण शक्ति अमूर्त नाम की सुरक्षा में लगा दी। अन्य देश के लोगों ने अपने बहुमूल्य खजाने को भरने के लिये सोने-चाँदी के ढेर इकट्ठे किये थे। भारत में रोम से सोने का आयात होता था। भारत के विद्वानों ने अपने एक विशेष प्रकार के खजाने को भरने में पूरी ताकत लगा दी। सभी बड़े लोगों ने आगे की पीढ़ियों के लिये यह सिखाया, यह उपदेश दिया कि इस सविशेष खजाने को सुरक्षित करने में अपना जीवन लगा देना और हजारों पीढ़ियों ने ऐसा ही किया। यह उपदेश निरुक्त के एक उद्धरण में प्राप्त होता है-

विद्या ह वै ब्राह्मणमाजगाम गोपाय मा शेवधिष्टेऽहमस्मि।

अर्थात् विद्या वेदाभ्यासी विद्वानों के पास आई और बोली-मुझे सुरक्षित कर लो, मैं तुम्हारा खजाना हूँ।

सचमुच, यह अचरजभरा खजाना था। जिसने भी इसे खोला, उसे इसमें कोई चमक-दमक वाले हीरे, जवाहरात नहीं दिखाई दिये। हीरा ही क्यों, कुछ भी दृश्य पदार्थ नहीं दिखाई दिया। क्योंकि वह तो अमूर्त वाणी का खजाना था! अमूर्त वाणी! और उसका इतना सम्मान!! यह कार्य भारत के मनीषियों द्वारा ही सम्भव हो पाया है।

संस्कृत में वाणी के जानकार को वाग्मी कहा जाता है। इंग्लिश में विशिष्टष्ट ज्ञाता की सबसे बड़ी उपाधि डी.लिट्. है, जिसका पूर्ण रूप डॉक्टर ऑफ लेटर्स है। यह सब कुछ अक्षर के महान् समुद्र में ज्ञान-समुद्र के अधिष्ठित होने का परिचायत है। यहाँ इन सामान्य से लगने वाले शब्दों में इस गम्भीर भाव को भर दिया गया है। संस्कृत में इस भाव के लिये वाग्योगवित् जैसे सुन्दर शब्दों का प्रयोग होता है।

परन्तु इस इंग्लिश सूक्ति के सामान्य अनुवाद वाले साक्षर शब्द में इतना भाव-गाम्भीर्य समाहित नहीं है। इसका अर्थ अक्षर-पठन का ज्ञान प्राप्त करने वाला बालक होता है। अतः इसे उस इंग्लिश सूक्ति का भावानुवाद नहीं कहा जा सकता है।

संस्कृत की पद्धति-अनुसार कोई ावणी के अर्थ-गाम्भीर्य को न समझने वाला, खराब चाल-चलन का व्यक्ति भी साक्षर कहा जा सकता है। अतः संस्कृत की एक सूक्ति में उच्च आचार वाले, काव्य-स्वारस्य समझने वाले वयक्ति को अलंकार से सरस कहा है तथा सरस बनने की कामना की गई है-

साक्षरा विपरीताश्चेद् राक्षसा एव केवलम्। सरसो विपरीतश्चेद् सरसत्वं न मुञ्चति।।

अर्थात् साक्षर व्यक्ति आचार-विचार से विपरीत होकर निन्दा का पात्र बन जाता है, जिस प्रकार स्वयं साक्षर शब्द वर्ण-विपर्यय को प्राप्त होकर राक्षस के रूप में बदल जाता है। परन्तु सरस व्यक्ति शब्द विज्ञानी तथा काव्यशास्त्री दोनों होता है। अतः वह कभी अपने आचार से हीन न होकर सदा शुभ-स्वरूप में बना रहता है। जिस प्रकार स्वयं सरस शब्द को वर्ण विपर्यय करने पर भी वह अपने मूल स्वरूप को नहीं छोड़ सकता।

सर्वथा अमर अक्षर का बोध विज्ञानी बनने की सबसे बढ़िया पहचान है।

- वैदिक पथ के संसार

* * * * *

विद्यार्थीकाल है स्वयं को सही दिशा देने का काल

जीवन में पूर्णता प्राप्त करने का सर्वश्रेष्ठ अवसर है छात्र अवस्था। इस अवस्था मेंअपने को जैसा ढाल दिया जाता है, फिर वैसा ही हमारा स्वभाव आगे बनता चला जाता है। छात्र जीवन अवसर है अपने सुनिर्माण का। यह निर्माण राष्ट्र का भविष्य और विश्व की आशा है। इसीलिए तो कहा जाता है कि छात्र अवस्था मानव जीवन की बुनियाद है।

शुरुआत में लक्ष्य सामने जरूर होना चाहिए। बिना लक्ष्य के किए गए सभी प्रयास, वैसे ही मिथ्याकल्पित होते हैं; जैसे नहाने के बाद फिर धूल में लेट जाने से हाथी का स्नान करना व्यर्थ हो जाता है। अतः हमारा पूरा प्रयास तय किए गये ध्येय की तरफ हो, अन्यथा हमारे द्वारा किया गया सारा प्रयास निरर्थक साबित हो सकता है। कोई भी लक्ष्य सभी सफल हो पाता है; जब उसके साथ हमारी निष्ठा जुड़ी हुई होती है। निष्ठा जितनी प्रखर होगी, मंजिल उतनी ही करीब होगी। निष्ठा का अर्थ है निरन्तर स्थिरता।

जब भी सफलता सन्दिग्ध होती है, तो समझिऐ कि निष्ठा में कुछ अन्तर आ गया है। निष्ठावान् प्रयत्नशील व्यक्ति ही ऊंचाईयों को मापा करते हैं। ऊंचाईयों पर अंकित होने वाले हर व्यक्ति को पहले लक्ष्य का निर्णय, फिर लक्ष्य-प्राप्ति की योजना, तत्पश्चात्, निष्ठापूर्वक निर्धारित योजना को क्रियान्वित करते हुए अपने कदम मंजिल की ओर बढ़ाने चाहिए। ऊंचाई पर अंकित होने का यही सबसे सरल क्रम है।

सफलता की ओर बढ़ते हुए कदम कई बार डगमगाने लगते हैं। आशंका घर कर जाती है कि कहीं फिसल न जाएं। उस समय आवश्यकता पड़ती है धीरज बनाए रखने की । और साथ में यह भी देखना होता है कि कहीं हमारे कदम दिशा से कुछ बहक तो नहीं गए हैं। कदमों के बहकने का मतलब है कि हम अपनी मंजिल के करीब आकर भटक गए हैं। अतः अपने कदमों को कुछ आगे बढ़ाने के बाद पीछे मुड़कर जरूर निहारें कि हमने कितने और कैसे पग बढ़ाए हैं। उनमें क्या-क्या सुधार संभव है। कहीं हमने दिशा तो गलत नहीं पकड़ ली है। यह प्रक्रिया बार-बार दुहराने से योग्यता समुचित विकास होता है। यह प्रक्रिया जीवन के सभी क्षेत्रों में समान रूप से उपादेय है। इससे व्यक्ति की समस्त त्रुटियां शनैः शनैः क्षीण होती जाती हैं। शास्त्र में दुहराने की इस प्रवृत्ति को सिंहावलोकन काह जाता है।

वनराज सिंह सदैव अपनी यात्रा में यह प्रक्रिया दोहराता है। कुछ आगे चलने के बाद वह पीछे मुड़कर जरूर देखता है। जिससे उसे अपने अन्तर में झांकने का भी अवसर मिलता है। इसीसे उसका वन में एकछत्र राज्य स्थापित रहता है।

जीवन के सुनिर्माण में अध्ययन सर्वोपरि है। अध्ययन की सफलता समय का दृढ़ता से पालन करने पर आधारित है। अध्ययन में सफलता का प्रथम अंग है, घड़ी की सुई से बंधा हुआ नियमित जीवन । दिनदर्या में में आपके जीवन का एक-एक सेकेण्ड का निश्चित कार्यक्रम होना चाहिए। विद्यार्थी जीवन घड़ी की तीनों (घण्टा, मिनट, सेकेण्ड) सुइयों की नोक पर घूमने वाला होना चाहिए। समय का हर क्षेत्र में कड़ाई से पालन करने पर ही सफलता कदमों को चूमा करती है।

अध्ययन में विशेषता ग्रहण करने के लिए मस्तिष्क को समझना जरूरी है। अखिल ज्ञान-विज्ञान तथा कर्मकुशलता का अक्षय कोश हमारा मस्तिष्क ही है। जीवन के उच्चतम शिखरों पर पहुंचने के लिए मस्तिष्क की इस विशेषता को समझना जरूरी है। ब्रह्म और ब्रह्माण्ड के सकल रहस्यों को उद्घाटन करने वाला यह मस्तिष्क ही है। अतः प्रयास हो कि यह मस्तिष्क स्वस्थ, शीतल, शान्त और स्थिर रहे। क्रोध, उत्तेजना, चिड़चिड़ापन मस्तिष्क के भयानक रोग हैं। क्रोध का अर्थ है पागलपन का दौरा। उत्तेजना और चिड़ाचिड़ापन मस्तिष्क की सड़ांध के लक्षण हैं। स्थस्थ और पवित्र विचारों से मस्तिष्क का निखार होता है। अस्वस्थ और निराशाजनक विचार मस्तिष्क को सर्वथा जर्जर कर देते हैं। अतः यह जरूर ध्यान रहे कि पवित्र विचार ही मानव मस्तिष्क को सदा स्वस्थ रखते है।

– विद्यार्थी प्रतिभा विकास से साभार

* * * * *

ये विद्यायें सम्प्रदायिक ग्रन्थों में लेश मात्र भी नहीं हैं।

महर्षि दयानन्द ने स्व रचित सत्यार्थ प्रकाश पुस्तक में सभी सम्प्रदायों के विषय में प्रमाणित रूप से लिखा है और वैदिक धर्म को ही एक मात्र मानव धर्म निश्चय किया है।

वर्तमान में सम्प्रदायों को धर्म की संज्ञा देना ही विरल अशान्ती का कारण है। क्योंकि वे सभी अपने-अपने संप्रदाय के विस्तार में संलग्न हैं और मानव-मानव में द्वेष भावनाओं को प्रोत्साहित करते हैं।

अतः वेद ही एक मात्र विश्व की धर्म पुस्तक है इसे जानने, मानने और अनुसरण करने से ही विश्व शान्ती सम्भव है।

आश्रम-११६, गाँधी नगर,
मथुरा-२८१००८ उ.प्र.
मो.: ९८६८७२०७३८

* * * * *

मदिरा ओषधि नहीं, विष है

कुछ लोगों तो यह कहते हैं कि अल्प मात्रा में मदिरा ओषधि का कार्य करती है। वास्तव में यह उन लोगों की भ्रान्ति है, क्योंकि -

१. ओषधिरूप में मदिरा की कहीं कोई उपयोगिता नहीं है।

२. विश्व में ऐसा कोई रोग नहीं है, जिसकी ओषधि मदिरा है।

३. किसी भी चिकित्सा-पद्धति में मदिरा का कोई औषधीय स्थान नहीं है।

४. अमेरिका के मान्य औषधकोश में से १९४२ में ब्राण्डी और वाइन को तथा १९५० में व्हिस्की को निकाल दिया गया है।

५. मदिरा में चिकित्सा-सम्बन्धी कोई गुण नहीं है।

६. कुछ लोग यह कहते हैं कि मदिरा चिन्ता और दुःख को दूर करती है, परन्तु यह पूर्णतः असत्य है, क्योंकि मदिरा तो स्वयं ही चिन्ता और दुःख की जननी है। अतः चिन्ता और दुःख उत्पन्न करनेवाली वस्तु चिन्ता और दुःख को कैसे दूर कर सकती है?

अतः यह निर्विवाद-रूप से सत्य है कि मदिरा कोई ओषधि नहीं, वरन् विष है।

उपर्युक्त विवेचन से यह सिद्ध होता है-

१. मदिरा एक ऐसा विष है, जो मनुष्य को मृत्यु के मुँह में धकेल देता है।

२. मदिरा एक ऐसा भयानक शत्रु है, जो मद्यप के तन, मन, धन, बुद्धि, आत्मा, घर-परिवार, सम्मान और समाज को नष्ट कर डालता है।

३. मदिरा एक ऐसी धधकती हुई भट्ठी है, जिसमें गिरने के बाद सर्वनाश होना निश्चत है।

४. मदिरा एक ऐसी नदी है, जिसमें गिरनेवाला अवश्य ही डूबता है।

अतः मदिरापान कभी नहीं करना चाहिये।

* * * * *

संबंधों को ठीक बनाए रखने के लिए स्नेह की कुछ बूंदे

– सीताराम गुप्ता

कुछ दिन पहले की बात है कि एक ऐसा ताला खोलने का अवसर मिला जो काफी समय से बंद पड़ा था। पहले तो चाबी के छेद में चाबी ही बड़ी मुश्किल से घुसी और जब उसे घुमाने की कोशिश की तो फिर वो अटक गई। चाबी को कई बार दाएं-बाएं घुमाने पर ही बड़ी देर के बाद ताला खुल पाया। कुछ देर बाद जब पुनः ताला बंद करने की कोशिश की तो वह अड़ गया। उसने बंद होने से पूरी तरह मना कर दिया। ताला बंद करने के लिए खूब जोर लगाया, पर सब बेकार। ताला तो बंद करना ही था अतः उसकी अकड़ को ढीला करने केलिए उसमें दो बूंद तेल टपका दिया। तेल डालना था कि उसकी अकड़ जाती रही। ताले की कुंडी अथवा शैक्ल आराम से ऊपर-नीचे होने लगी और अपने स्थान पर फिट हो गई। चाबी भी सरलतापूर्वक घूमने लगी। सारा अवरोध समाप्त हो गया जिससे ताला आसानी से बंद हो गया।

ताले की अकड़ कम करके उसे बंद करने में जो सबसे महत्त्वपूर्ण भूमिका थी वह तेल की दो बूंदों की थी। तेल ईंधन के रूप में ऊर्जा का स्त्रोत ही नहीं मशीनोंको बिना घर्षण के चलाने में भी सहायक होता है। तेल को स्नेह भी कहा जाता है। घर्षण कम करने केलिए मशीनों के गति करने वाले कल-पुर्जों में तेल डाला जाता है जिसे स्नेहन करते हैं। स्नेहन अर्थात् लूब्रिकेशन। इससे मशीनें बिना कर्कश आवाज़ किए आसानी से चलती हैं और कम घिसती हैं। लौह आदि विभिन्न धातुओं की ज़ंग लगी वस्तुओं अथवा मशीनों पर ही नहीं मनुष्यों पर भी स्नेहन अथवा लूब्रिकेशन बखूबी काम करता है। शरीर को स्वस्थ रखने के लिए भी हम अपने शरीर पर तेल लगतो हैं अथवा मालिश करते हैं। जितना यह भौतिक शरीर व जड पदार्थों पर कारगर होता है मानवीय संबंधों के निर्माण व विकास में यह उससे भी अधिक कारगर है।

संबंधों के सही निर्वहन अथवा परिचालन में भी स्नेह की अत्यंत आवश्यकता होती है। स्नेह के अभाव में ही हमारे आपसी संबंध जंग लगी मशीनों की तरह हो जाते हैं। ऐसे संबंधों में जब भी संवाद स्थापित करने की ज़रूरत पड़ती है या तो वे जंग लगे तालों की तरह अटक जाते हैं या फिर पुरानी ज़ंग लगी मशीनों की तरह खड़खड़ करने लगते हैं। ऐसे में संवाद द्वारा किसी उचित निष्कर्ष पर पहुंचना संभव ही नहीं हो सकता। स्नेह अथवा प्यार के अभाव में उन्हें पटरी पर लाना संभव ही नहीं। हमारे संबंधों में स्नेहन के कई रूप हो सकते हैं। स्नेहन का एक रूप है हम सबके लिए केवल अच्छे शब्दों का प्रयोग करें। हमारे शब्दों में दूसरों के लिए आत्मीयता व सम्मान होना चाहिए। दूसरों की अच्छी आदतों व कार्यों के लिए हमेशा प्रशासा की जानी चाहिए। इससे व्यक्ति का आत्मसम्मान बढ़ता है और वो अपनी क्षमता से बढ़कर कार्य करने को तत्पर हो जाता है।

लोगों की उपेक्षा करने की बजाय हमें उनमें रुचि लेनी चाहिए। लोगों को आगे बढ़ने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए। इससे आपसी विश्वास में वृद्धि होती है। समाज में सामंजस्य उत्पन्न होता है। दीर्घ काल तक उपेक्षित व हतोत्साहित कोई भी व्यक्ति जंग लगे ताले अथवा मशीन जैसा ही हो जाता है। उसमें निराशा उत्पन्न होने लगती है। ऐसे व्यक्ति से अच्छे संबंध बनाए रखना कठिन हो जाता है। इस स्थिति को आने न देने में ही समझदारी है। स्नेहपूर्ण सामान्य शब्दों का भी हमारी बातचीत व आपसी संबंधों पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। इससे माहौल खुशगवार बना रहता है। यदि हम ऐसा माहौल बना पाते हैं तो इसका सबसे अधिक लाभ हमें ही मिलता है। जिद्दी अथवा उद्दण्ड बच्चों पर दण्ड नहीं स्नेह सही काम करता है। स्नेह के अभाव में लोग असभ्य व अमानवीय व्यवहार करने लगते हैं।

स्नेहन का कएं अन्य रूप है स्नेहपूर्ण आत्मीय स्पर्श। जब हम स्नेह के वशीभूत होकर किसी को स्पर्श करते हैं तो संबंधों पर जमी बर्फ की मोटी परत को पिघलते देर नहीं लगती। एक स्नेहपूर्ण आत्मीय स्पर्श मन में व्याप्त राग-द्वेश रूपी कोहरे को साफ करके संबंधों में ऊष्मा भर देने में पूरी तरह से सक्षम है। हज़ारों प्यार भरे शब्दों से अधिक

प्रभावशाली होता है एक आत्मीय स्पर्श। जब हम अपने अंदर स्नेह का स्त्रोत प्रवाहित कर लेते हैं तो हमारे शहरीर व हाथों की हथेलियों व उंगलियों के अंदर एक जादुई शक्ति प्रवाहित होने लगती है जिसके प्रभाव से हम जिसे स्पर्श करते हैं वा अपेक्षित सकारात्मक प्रतिक्रिया करने को विवश हो जाता है। संबंधों को हमेशा अच्छे बनाए रखने व तनावपूर्ण अथवा खराब संबंधों को ठीक करने का यही एकमात्र प्रभावशाली उपचार है।

स्नेह का एक रूप है किसी को मन से स्वीकार करके उसके प्रति चिंता व सहयोग की भावना रखना। जब हम किसी के लिए मन से कोई कार्यकरते हैं अथवा सहयोग करते हैं तो इससे जन संबंधों का निर्माण व विकास होता है वे अत्यंत आत्मीय व महत्त्वपूर्ण संबंध बन जाते हैं। उन्हें कभी नहीं भुलाया जा सकता। उनमें विषम परिस्थितियों में भी कभी तिक्तता अथवा वैमनस्य उत्पन्न नहीं हो सकता। एक सात-आठ साल की कमज़ोर और दुबली-पतली लड़की अपने से दो-एक साल छोटे एक हृष्ट-पुष्ट बच्चे को गोद में उठाकर तेज़ी से चली जा रही थी। एक राहगीर ने जब ये देखा तो उसने उत्सुकतावश लड़की से पूछा, बेटा इतना बोझ उठा कर भी तुम इतनी तेज़ी से कैसे चल लेती हो? बोझ नहीं ये मेरा भाई है, लड़की ने राहगीर को जवाब दिया और खुशी-खुशी अपने मार्ग पर आगे बढ़ गई। स्नेह के कारण ही हम असंभव से लगने वाले कार्य भी कर पाते हैं जबकि स्नेह के अभाव में मामूली काम भी अटके पड़े पहते हैं। उनको करने में आनंद नहीं आता। स्नेह सफलता प्रदान करने में भी सहायक होता है।

लड़की अपने भाई को बहुत प्यार करती है अतः उसका भाई उसके लिए बोझ नहीं है। जिस व्यक्ति, वस्तु अथवा प्राणी को हम मन से चाहते हैं, जिसे प्यार करते हैं, अपना मानते हैं वह हमें बोझ नहीं लगता। उसकी हर चेष्टा, हर हरकत अच्छी ही लगती है और उसके लिए कुछ भी करना हमें प्रसन्नता प्रदान करता है। यही वास्तविक स्नेह है। स्नेह के वशीभूत ही हम किसी की प्रसन्नता का ध्यान रखते हैं। स्नेह के कारण ही हम दूसरों की सेवा कर पाते हैं। उसे जिस बात में सबसे ज़्यादा खुशी मिलती है वही हम करने का प्रयास करते हैं। स्नेह के कारण ही हमअपने प्रियजनों को समय-समय पर उपहार देते रहते हैं। समय पर किसी की बहुत जरूरी चीजें उपलब्ध करवाना भी स्नेह का ही एक रूप है। यह भी उपहार ही है। यदि किसी को अपनी बातें दूसरों को हने या अपने मनोभावों को व्यक्त करने में आनंद की अनुभूति होती है तो उसके पास बैठकर ध्यानपूर्वक उसकी बातें सुनना भी स्नेह से कम नहीं।

आजकल कुछ लोग स्नेह अथवा नवनीत आलेपन या बटरिंग द्वारा अपना उल्लू सीधा करने में भी कम माहिर नहीं। कुछ लोगों को इसे करने में तो कुछ लोगों को इसे करवाने में मज़ा आता है लेकिन यह स्नेह नहीं कहा जा सकता। ऐसा व्यवहार केवल स्वाथपूर्ण संबंधों का निर्माण कर सकता है। इसके मूल में अनुचित कार्य करवाने अथवा झूठी प्रतिष्ठा पाने का भाव व्याप्त रहता है। स्नेह तभी उत्तम होगा जब ये हमारे मनोभावों को सकारातम्क रूप से परिवर्तित करने में सक्षम हो और मनोभावोंमें स्निग्धता उत्पन्न करे। यह हमारे व्यवहार से व्यक्त होना चाहिए मात्र शब्दों से नहीं। नन्हें शिशुओं की मासूमियत का कारण उनका आंतरिक स्नेह ही होता है। वे राग-द्वेष नहीं जानते। इसी कारण हर कोई उन्हें गोद में उठाने व प्यार करने को आगे बढ़ता है। हम नन्हे शिशुओं तथा बच्चों से स्नेह का सही रूप सीख सकते है। संबंधों की गाड़ी को असमय घिस-घिसकर टूटने-बिखरने से बचाने अथवा उसे कर्कश ध्वनी करने से रोकने के लिए उसमें स्नेह की कुछ बूंदे टपकाते रहना हमारे अपने व संपूर्ण समाज के हित में ही होगा।

- ए.डी.-१०६-सी, प्रीतमपुरा, दिल्ली-११००३४.
फोन नं.: ०९५५५६२२३२३

* * * * *

प्राक्कथन

ज्ञान प्राप्त करने के तीन ही तरीके हैं। (१) पढ़ना, (२) सुनना, और (३) अनुभव करना। इन्हीं के शास्त्रोक्त नाम हैं (१) स्वाध्याय, (२) सत्संग और (३) निदिध्यासन। ज्ञान अर्जित करने में स्वाध्याय का बड़ा महत्व है। उपनिषदों ब्राह्मण ग्रन्थों और दर्शनों में स्वाध्याय के लाभ प्रचुर मात्रा में बताये गये हैं। पर स्वाध्याय के द्वारा व्यक्ति ज्ञानी, ध्यानी बेशक बन जाए, परन्तु विवेक सत्संग से ही प्राप्त होता है। रामचरितमानस के रचनाकार महाकवि तुलसीदास के शब्दों में-

बिनु सत्संग विवेक न होई। राम कृपा बिनु सुलभ न सोई।।

ईश्वर की महान कृपा और बड़े सौभाग्य की बात है कि व्यक्ति को विद्वानों का सत्संग प्राप्त हो। सत्संग ही सच्चा तीर्थ है, जिसको पाकर मनुष्य तर जाता है।

महात्म चैतन्यमुनि की बड़ी उदारता है, कि उन्होंने अपनी इस छोटी सी पुस्तक विद्वानों का संग क्यों करें सत्संग की महिमा बड़ी सरल और रोचक शैली में समझा दी है। वेद का तो आदेश यही है :

तमिद वोचेमा विदयेषु शं भुवं मंत्र देवा अनेहसम्।
इमां च वाचं प्रतिहर्यथ नरो विश्वेद् वामा वो अश्नवत्।। - ऋग.१/४०/६

विद्वान सत्सगों में कल्याणकारी वेद मंत्र ही बोलें ओर सत्संगी भी इसी कल्याणी वाणी सुनने की कामना रखें, जिससे सत्संग की सर्वत्र प्रशंसा हो, तथा विद्वान और सत्संगी प्रशंसा का सेवन करें।

अपूर्व सत्संगी मेहता रवीन्द्र आर्य भी बधाई के पात्र हैं, जो प्रत्येक सत्यंग में चाहे वह दिल्ली या दिल्ली के बाहर कहीं भी हो, सम्मिलित होना अत्यन्त वृद्ध होने हुए भी नहीं छोड़ते। लागत मूल्य पर महात्मा चैतन्यमुनि की इस पुस्तक को प्रकाशित करके सर्व-साधारण पर उन्होंने एक और उपकार किया है।

ईश्वर से प्रार्थना है कि लेखक और प्रकाशक दोनोंही दीर्घायु हों, और इस प्रकार का उत्तम साहित्य जनता एवं सुधी पाठकों को देते रहें।

मंगल कामनाओं सहित

आर्य संन्यासी-**महात्मा गोपाल स्वामी सरस्वती**
वैदिक मिशनरी
आर्य वानप्रस्थाश्रम, आर्य समाज, बी-६९, सैक्टर-३३,
नोएडा-२०१३०१ (उ.प्र.) (फोन) : ०-९८१८५८३१७८

* * * * *

आमुख

व्यक्ति के जीवन के उत्थान और पतन का आधार उसके विचार ही हैं। यदि व्यक्ति के विचार पवित्र तथा आत्मविश्वास से भरे हों तो वह निश्चित रूप से अपने जीवन में चहुंमुखी उन्नति प्राप्त करके अपने लिए सुख का सृजन कर लेता है और इसके विपरीत यदि उसके भीतर विचारों की पावनता तथा आत्मविश्वास की कमी है तो यही जीवन उसके लिए एक अभिशाप बन जाता है। विचारों की इस पावनता को प्राप्त करने के लिए व्यक्ति के जीवन में अच्छी संगति अपना एक महत्वपूर्ण स्थान रखती है। हमारे सामने इतिहास में एक नहीं बल्कि ऐसे सैकड़ों ही उदाहरण भरे पड़े हैं जो यह दर्शाते हैं कि यदि व्यक्ति को अच्छा संग मिल जाए तो उसका पतित से पतित जीवन भी संवर जाता है तथा वह अपने जीवन में ऐसे कार्य भी कर दिखाता है जिसकी वह कल्पना तक भी नहीं कर पाताहै। इसी प्रकार ऐसे भी कितने ही उदाहरण भरे पड़े हैं कि अच्छा-भला व्यक्ति कुसंग में पड़कर अपना जीवन बर्बाद कर लेता है। यह ठीक है कि व्यक्ति के किए हुए कर्म कभी क्षमा नहीं होते हैं मगर सत्संग के प्रभाव से व्यक्ति द्वारा जो आगे बुरे कर्म होने थे उससे वह बच जाता है। क्योंकि सत्संग उसकी पूरी चिारधारा को बदलने की सामर्थ्य रखता है। लेकिन यह बात विचारणीय है कि संग किस व्यक्ति का करें। इसके लिए व्यक्ति को जागरूक रहने की आवश्यकता है। वैदिक मान्यताओं के आधार पर जिस व्यक्ति का जीवन पूर्णतया पवित्र और परोपकार की भावनाओं से भरा हो उसी का संग करना चाहिए। इसी प्रकार किसी भी भीड़ में किसी के द्वारा कुछ भी कहा जा रहा हो वह भी सत्संग नहीं है बल्कि जहां सत्य बात कही जा रही हो वही वास्तविक सत्संग है। इस दृष्टिकोण से जहां वेद की बात कही जा रही हो वही वास्तविक सत्संग है क्योंकि वेद ही परमात्मा सत्य तथा निभ्रान्त ज्ञान है। वेद ज्ञान के विरूद्ध जो कुछ भी सत्संग के नाम पर आज सुना और सुनाया जा रहा है उससे मानव मात्र बहुत भ्रमित हो गया है तथा विशेष रूप से हमारी आने वाली पीढ़ी धर्म-कर्म के वास्तविक स्वरूप को भूलकर नास्तिकता के दौर से गुज़र रही है।

सत्संग से व्यक्ति के समूचे जीवन का ही कायाकल्प हो जाता है इसलिए इसे विद्वानों ने साक्षात् कल्पतरू कहा है। सत्संग के प्रभाव से यह कायाकल्प स्वतः ही हो जाता है। अच्छी बात जहां कहीं से भी मिले उसे तुरन्त जीवन में ढाल लेना चाहिए तथा बुरी बात को सदा मन से दूर निकालते रहना चाहिए। इस प्रकार धीरे-धीरे व्यक्ति के भीतर विचारों की पावनता और आत्मविश्वास पैदा हो जाता है। इस लघु पुस्तिका में हमने विस्तार से सत्संग के महत्व तथा उसके प्रभाव के बारे में विवेचन करने का प्रयास किया है। हमारा विश्वास है कि इसके अध्ययन से व्यक्ति का वर्तमान जीवन उन्नति के सोपानों को फलांगता हुआ उच्च से उच्चतम होता चला जाएगा।

इस लघु पुस्तिका में प्राक्कथन द्वारा अपनी टिप्पणी देने के लिए वृद्ध संन्यासी महात्मा गोपाल स्वामी जी का आभार व्यक्त करता हूं।

विदुषामनुचरः
महात्मा चैतन्यमुनि
८१/एस-४, सुन्दरनगर कालोनी,
ज़िला मण्डी (हि.प्र.)
दूरभाष : ०१९०७-२६३०९२
चलभाष : ९४१८०५३०९२

* * * * *

वन्दना क्यों?

– प्रो. उमाकान्त उपाध्याय

हम प्रभात वन्दन पर विचार कर रहे हैं। एक स्वाभाविक प्रश्न मन में उड़ता है। वन्दना क्यों करें? वन्दना का अर्थ ही क्या है?

हम वन्दे मातृरम् बोलते हैं और हमारे मन में भाव यह होता है कि हम अपनी मातृभूमि की वन्दना कर रहे हैं, मातृभूमि का गुणगान कर रहे है, मातृभलूमि के गुणों का, विशेषताओं का स्मरण कर रहे हैं। यह सब क्यों? यह सब इसलिए भी करते हैं कि वे मनुष्य प्रसन्न होकर हमें कुछ दें, कुछ हमारे पक्ष में, हमारे हित के लिए कर दें। यही प्रशंसा या गुणगान चापलूसी का भी रूप ले लेता है। सज्जन लोग चापलूसी जैसे गुणगान को अच्छा नहींस मझते। अच्छे, भक्त परमेश्वर की स्तुति करते हैं, चापलूसी नहीं।

हम परमेश्वर का गुणगान करें तो क्या परमेश्वर अपना गुणगान सुनकर हमारे अपराधों को, या हमारे पापों को क्षमा कर देंगे? उत्तर बिल्कुल सीधा है। भगवान् चापलूसी–पसन्द नहीं है। प्रभु गुणगान करने से हमारे पापों को क्षाम नहीं करेंगे और नहीं ही बिना कर्म किये हमें कुछ अच्छा फल ही दे देंगे। हम इस संसार में ही देखते हैं कि जो व्यक्ति न्यायप्रिय हैं, जो व्यक्ति अच्छे चरित्र वाले हैं, वे किसी की चापलूसी सुनकर चापलूस के लिए कोई पक्षपात नहीं करते हैं। जब अच्छे चरित्र के सज्जन लोग ही किसी चापलूस की चापलूसी के कारण कोई पक्षपात नहीं करते हैं, तो क्या परमेश्वर चापलूसी पूर्ण वन्दना, प्रार्थना या स्तुति सुनकर किसी को उसके कार्मे से अधिक दे देंगे? परमेश्वर तो न्यायकारी हैं, उनके दरबार में न कोई चापलूसी चलती है, न कोई सिफारिश, न कोई संस्तुति चलती है, तो फिर हम प्रभु की प्रार्थना, वन्दना या स्तुति क्यों करें? प्रभु का गुणकीर्तन क्यों करें? प्रार्थना क्यों करें?

इस सम्बन्ध में महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी का एक उद्धरण सत्यार्थ प्रकाश के सप्तम समुल्लास में उपलब्ध होता है। इस सम्बन्ध में इस उद्धकरण का चिन्तन, मनन अति उपयोगी है। स्वामी जी ने प्रश्नोत्तर की शैली में लिखा है –

प्रश्न–परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना करनी चाहिए, या नहीं?

उत्तर–करनी चाहिए।

प्रश्न–क्या स्तुति आदि करने से ईश्वर अपना नियम छोड़ स्तुति, प्रार्थना करने वाले का पाप छुड़ा देगा?

उत्तर–नहीं।

प्रश्न–तो फिर स्तुति प्रार्थना क्यों करना?

उत्तर–उनके करने का फल अन्य ही है।

प्रश्न–क्या हैं?

उत्तर–स्तुति से ईश्वर में प्रीति, उसके गुण–कर्म–स्वभाव से अपने गुण–कर्म–स्वभाव का सुधारना, प्रार्थना से निरभिमानता, उत्साह और सहाय का मिलना, उपासना से परब्रह्म से मेल और उसका साक्षात्कार होना।

इस उद्धरण का अन्तिम अंश बहुत महत्वपूर्ण है। स्वामी जी लिखते हैं कि परमेश्वर की स्तुति करने से उसमें प्रीति और अपने गुण–कर्म–स्वभाव का सुधार होता है।

थोड़ा सा विचार करते हैं। हमारा अनेक बार का यह अनुभव रहा है, कि जब किसी सुयोग्य शिष्य को प्रातः भ्रमण, आसन व्यायाम, प्राणायाम आदि सिखाने का हमारे मन में भाव उठता था तो हम ४–६ दिन उसे कोलकामाता के प्रसिद्ध परेड ग्राउण्ड मैदान में बुला लेते थे। वह शिष्य देखता था कि कुछ लोग दौड़ रहे हैं, कुछ लोग तीव्रगति से भ्रमण कर रहे हैं, वहीं कुछ लोग आसन, व्यायाम और प्राणायाम भी कर रहे हैं। कई बार शिष्य ऐसे लोगों के क्रियात्मक आचरण से प्रभावित होकर स्वयं भी कुछ करने लगते थे। इस प्रारम्भिक काल में हम ऐसे शिष्यों को योगियों और पहलवानों के जीवन चरित्र भी पढ़ने को कहते थे। गुणगान करने से मन में स्वतः अनुकरण करने की

लालसा पैदा हो जाती है। महाराणा प्रताप की हल्दीघाटी क लड़ाई या आल्हा जैसे वीर रस प्रधान काव्य को सुनने पर मन में वीर रस का संचार होता है और उन वीर योद्धाओं के लिए मन में प्यार पैदा होता है। इसी प्रकार जब हम परमेश्वर का गुण गान करते हैं तो हमारे मन में परमेश्वर के लिए प्यार, आदर, लगाव आदि की भावनाएं उगने लगती हैं। धीरे-धीरे दया, करूणा, न्यायप्रियता आदि के भाव मन में उठने लगते हैं। यह सब ईश्वर के गुण कीर्तन का सुफल होता है।

स्वामीजी ने लिखा है कि परमेश्वर की प्रार्थना करने से मन में निरभिमानता, उत्साह और परमेश्वर की सहायता के भाव उद्य होते हैं। प्रार्थना का अर्थ ही है कि हम परमेश्वर से कुछ याचना कर रहे हैं। जैसे कि हम प्रार्थना करते हैं-

हे प्रभो आनन्ददाता, ज्ञान हमको दीजिए, शीघ्र सारे दुर्गुणों को दूर हमसे कीजिए।

इस तरह की हजारों प्रार्थनाएं हम करते हैं। कभी ज्ञान, कभी धन, कभी स्वास्थ्य, कभी और कुछ इत्यादि मांगने वाला अभिमान नहीं कर सकता। मांगने के लिए नम्र, विनयशील होना होता है। इसीलिए प्रार्थना करने वाला अभिमान नहीं होता।

प्रार्थना करने से परमेश्वर की सहायता भी मिलती है। जब हम कुछ लेना चाहते हैं, तो हमें लोने को पात्र भी बनना पड़ता है। भगवान् की सहायता तो सबको मिलती रहती है, किन्तु भगवान खैरात, सदा व्रत, बिना तप परिश्रम के किसी को कुछ नहीं देते। आलसियों ने प्रार्थना गढ़ ली है।

अजगर करै न चाकरी, पंछी करै न काम। दास मलूका कह गये, सबके दाता राम। या
तुलसी बिरवा बाग में, सींचे ते कुम्हलाय, रहैं भरोसे राम के पर्वत पर हरियाय।

ये सब आलसी, प्रमादी लोगों की उक्तियां हैं-परमेश्वर तो आदेश देते हैं-

कुर्वन्नेवेहि कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः यजु. ४०-२१

कर्म करते हुए ही सैकड़े वर्ष जीने की इच्छा करे। जो प्रयत्नपूर्वक चेष्टा करके परमेश्वर से प्रार्थना करते हैं उन्हें परमेश्वर की सहायता अवश्य मिलती है।

परमेश्वर की उपासना का फल होता है कि हमें परमेश्वर के गुणों कृपा, दया आदि का साक्षात् अनुभव होने लगता है।

उपासना का अर्थ होता है-

उप+आसना, उप समीप और आसना स्थित होना या बैठना। इस प्रकार उपासना का अर्थ हुआ समीप में स्थित होना या रहना। परमेश्वर शरीरधारी तो है नहीं कि उनके समीप बैठा जाये। परमेश्वर तो सर्वव्यापक, निराकार हैं। अतः परमेश्वर की उपासना का अर्थ हुआ कि हम अपने जीवन और चरित्र को परमेश्वर के गुणों के अनुकूल बनायें। हम मन से, मनन-चिन्तन से परमेश्वर की निकटता प्राप्त करें।

केवल गुण कीर्तन करते रहें और अपनी दीनता का, अनाथता का, रोना रोते रहें तो इससे कोई लाभ नहीं होता। इसलिए स्वामी दयानन्द जी ने लिखा है कि भांड़ की तरह गुण कीर्तन करने से कोई लाभ नहीं है। परमेश्वर की स्तुति करनी चाहिए और अपनी प्रार्थना के अनुकूल आचरण भी करना चाहिए। अपने को दीन या शक्तिहीन समझकर प्रार्थना करना चाहिए, किन्तु प्रार्थना के अनुरूप प्रयास, परिश्रम अवश्य करना चाहिए।

हमने अध्याय का आरम्भ किया था कि हम परमेश्वर की वन्दना क्यों करें और प्रातः काल उठकर परमेश्वर की वन्दना करने से क्या लाभ है? हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि परमेश्वर की वन्दना अवश्य करनी चाहिए, उससे हमें बड़ी भारी सहायता मिलती है।

परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना, उपासना का एक और बड़ा उत्तम परिणाम निकलता है। परमेश्वर की स्तुति प्रार्थना करने वाले के मन में एक सहायता, सहयोग पाने का आश्वासन उगने लगता है और उसकी नकारात्मक विचारधारा समाप्त हो जाती है। सकारात्मक विचारधारा, सक्रियता पूर्ण आश्वस्त चिन्तन और क्रियाशीलता के भाव

उगने लगते हैं। उसे प्रभु की कृपा का, सहायता का सकारात्मक आश्वासन मिलने लगता है। जिसके सहायक परमेश्वर हों, वह दूसरे की सहायता के लिए मोहताज नहीं होता। अतः प्रभु वन्दना का यह बड़ा भारी लाभ है। क्रियाशीलता में सफलता का आश्वासन मिलने लगता है। हमारे जीवन के चिन्तन में, क्रियाकलाप में सकारात्मकता आ जाती है।

* * * * *

सृष्टि का रचनाकार

– डॉ. बिजेन्द्र पाल सिंह

सृष्टि का रचनाकार कैसा है वह! कहां रहता है क्या करता है वेदों में उसका स्वरूप बताया है सच्चिदानन्द स्वरूप निराकार सर्वव्यापक सर्व शक्तिमान सर्वान्तर्यामी आदि गुणों वाला है। पौराणिक उसे अवतार लेने वाला व जन्म लेने वाला साकार वाला मानते है। उसकी विभिन्न आकार रूप वाली मूर्तियां बना उनमें प्राण प्रतिष्ठा करते मन्दिरों में पूजा करते हैं।

यदि ईश्वर साकार होता और मन्दिर में मूर्ति की भांति खड़ा रहता और जैसा कि पौराणिक मुँह में चने के दाने के बराबर भोजन या मिष्ठान लगा अपने आप पेट भर खाते हैं तो वह भगवान तो भूखा ही रह जाता फिर उसे क्रोध भी अता अनेक लोग पानी में दूध मिला कर महादेव पर चढ़ाते हैं। यह देख हो सकता है भगवान ऐसे भक्त को चांटा भी रसीद कर देता और कहता अपना दूध तो शुद्ध रखता है मेरे लिए पानी में एक चम्मच दूध मिला कर लाया है जो भाग जा यहां से।

और यदि भगवान (ईश्वर) चलता फिरता किसी के घर पहुँच जाता तो लोग दरवाजा भी बन्द कर लिया करते कहते रोजाना ही भोजन करने आ जाता है हाथ पैर है कमाकर नहीं खा सकता लोग बूढ़े, मां-बाप को नहीं खिला सकते उसे कैसे खिला सकते।

आकार वाला होता तो अनेक लोग उसकी चापलूसी करते किन्हीं से विरोध भी होता किन्हीं से अनवन भी होती और जातिवाद पक्षपात भी होता कोई उससे लड़ाई वाद-विवाद आरोप प्रत्यारोप भी लगते ऐसा भी तो हो सकता है कि कोई अन्य व्यक्ति ईश्वर को हटा कर कहता कि मैं ही ईश्वर समझो फिर असली नकली ईश्वर का झगड़ा होता आकार वाला होता तो उसकी आज की भांति हिन्दू मुसलमान ईसाई, पारसी जैन यहूदी आदि की भांति सम्प्रदाय भी होता और एक सम्प्रदाय मे होता तो उसी सम्प्रदाय का पक्ष लिया करता ।

ब्रह्मणादि किसी वर्ण या जन्म से जाती में होता ओर फिर जातिवाद भेदभाव से अन्य जाति वाले घृणा करते उच्च मिटा के भेद से देखा जाता आकार वाला होता तो जन्म भी लेता मृत्यु भी होती गर्भ में भी रहता जहां भी जन्म लेता वहां माता-पिता भाई बहन भी होते परिवार बहुत बड़ा होता।

ईश्वर आकार वाला होता तो दुनियां का सबसे धनवान भी होता धनवानौ का ही प्रिय होता निर्धन तो कभी मिलने पास पहुँचती ही न पाता।

आकार-वाला होता तो धनाढ्य लोग ईश्वर की चापलूसी करते उस आकार वाले को बहुत सारे महल वायुयान जलयान दे देते ईश्वर भी मौज में रहता फिर धनाड्यो की मनमानी को ही किया करता जिसको चाहता जो चाहता कर दिया करता क्योंकि मनुष्य या शेर चीता हाथी जो भी होता क्रोध भी आया करता क्रोध से ही सब कुछ उलट पुलट किया करता।

जीव जैसे ईर्ष्या द्वेष काम, क्रोध मद माया लोभ में लिप्त रहता है वह सब भी करता मनुष्य की भांति चलता

फिरता कहीं अनेकों शिष्य लाखों करोड़ो में हुआ करते हो सकता है इन्द्रियां होने से विषयों से दूर न रहा जाता और हृदय चर गुरुओंकी भांति जैसा कि अनेक आज कारागार में है ऐसा होता आकार वाला होता तो कर्मों का फल भी भोगना हानि लाभ सुख दुःख सब जीवन में होते फिर वही सब कुछ होता जो मनुष्य के साथ होता है कर्मफल भोगने हेतु वार-वार जन्म मरज में पड़ा रहता।

फिर जीव से परमात्मा में अनतर की क्यों होता फिर एक स्थान पर रह कर सृष्टि को कैसे चलाता कैसे पूरी पृथ्वी ब्राह्मण के काम-काज का ध्यान रखता और सृष्टि को कैसे नियम में चला पाता सब कुछ उलट पुलट हो जाता, सब कुछ देखते हुए यही उचित है कि परमात्मा निराकार ही ठीक है सब कुछ उसके विशेष व विज्ञान से है मनुष्य अल्पज्ञानी भी तो है उसे उतना ज्ञान कभी नहीं हो सकता जो उस परमेश्वर को है वह निराकार होकर नियम में सृष्टि का जैसा चला रहा है आकार का होकर नहीं कर सकता था-

आज मनुष्य सम्प्रदायों में उलझ कर रह गया है मानव बनें और ईश्वर को जानें इसके लिए वेदों की ओर चलना होगा जहां मानव मात्र एक जाति है एक ईश्वर है जो सच्चिदानन्द स्वरूप है निराकार व सर्वशक्तिमान है सर्वेश्वर सर्वव्यापक है उसी की उपासना करनी चाहिए।

- चन्द्रलोक कॉलोनी, खुर्जा-२०३१३१, मो. ८९७९७९४७१५

* * * * *

दान की महिमा वेद बताएं, धन्य वे जो दान कर जाएं।
करते न जो कभी भी दान, रूष्ट होते उनसे भगवान।
दान करो तुम शक्ति अनुसार, हो पात्र का भी सोच विचार।
दान, दरिद्र को ही तुम देना, उस वक्त नाम प्रभु का लेना।
भरा वेदों में गूढ़ ज्ञान, दिल खोल कर तुम करना दान।
विद्यादान श्रेष्ठ कहलाता, सब दानों को गौण कर जाता।
विश्वशान्ति व मानव कल्याण, इन भावों में भअके प्राण।
वेद सत्य पर देते जोर, वेद जगाते एक नई भोर।
वेद शिक्षा को न कभी भुलाओ, इसकी ही तुम अलख जगाओं।
प्रसाद वेदमन्त्र सिखाएं, सर्वकल्याण ये कर जाएं।

- रामप्रसाद शर्मा (प्रसाद)
सिहाल (कांगड़ा), हिमाचल प्रदेश-१७६०५३

महाशय जी के साथ सभामंत्री अशोक यादव

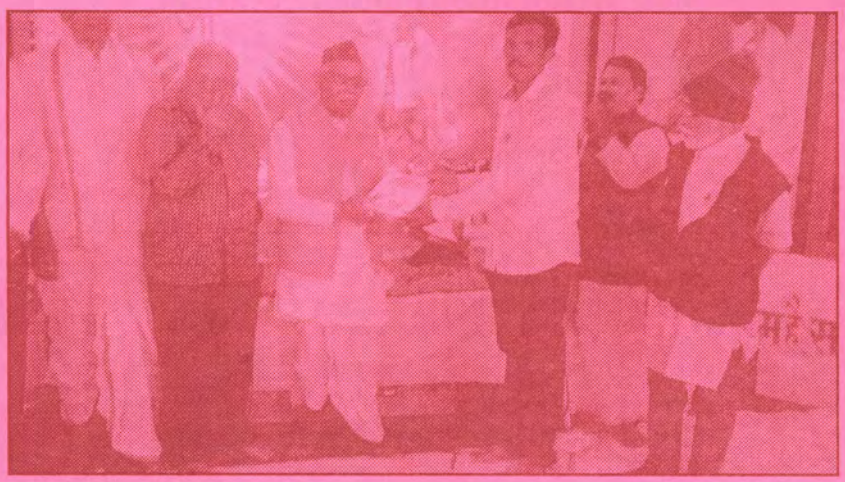

आर्य समाज, बेलखेड को आर्य जगत के भामाशाह राव हरिशचंद्र आर्य द्वारा एक लाख रुपये का दान

आर्य सेवक, [illegible]गपुर

प्रति,

440001 09.03.2019
EF1C 19712021
P140746
₹7.00

प्रकाशक : अशोक यादव, प्रबंधक संपादक एवं मंत्री आर्य प्रतिनिधि सभा मध्यप्रदेश एवं विदर्भ, नागपुर फोन : ०७१२-२५९५५५६ द्वारा उक्त सभा के लिये प्रकाशित एवं प्रसारित
मुद्रक : स्क्रीन पॉईन्ट ॲन्ड डिझाईनिंग, रेशिमबाग, नागपूर. मो.नं.: ९३२६८५१५७८५